गसे कदाचित् संज्ञिपञ्चेन्द्रिय अवस्थाको प्राप्त होकर भी तिर्यञ्च तथा नरक गतिमें निरन्तर दुःख घटनाओंसे विव्हल होनेके कारण और देवगतिमें विषम विष समान विषय भोगोंमें तल्लीनताके कारण आत्म-कल्याणके सन्मुख ही नहीं होता। मनुष्य भवमें भी बहुतसे जीव तो दरिद्रताके चक्करमें पड़े हुये प्रातःकालसे सायंकाल तक जठराग्निको शमन करनेवाले अन्न देवताकी उपासनामें ही फंसे रहते है और कितने ही लक्ष्मीके लाल अपनी पाणिगृहीत कुलदेवीसे उपेक्षित होकर धन ललनाओंकी सेवा सुश्रूषामें ही अपने इस अपूर्वलब्ध मनुष्य जन्मकी सफलता समझते हैं। इतना होने परभी कोई २ महात्मा इस मनुष्य शरीरसे रत्नत्रय धर्मका आराधन करके अविनाशी मोक्ष लक्ष्मीका अपूर्व लाभ उठाकर सदाके लिये लोक शिखरपर विराजमान हो अमर पदको प्राप्त होते हैं। यह ऊपर लिखा सब राग अलापनेका सारांश यह है कि, इस संसारमें भ्रमण करते २ यह मनुष्यजन्म बडी दुर्लभतासे मिला है। इस लिये इसको व्यर्थ न खोकर हमारा कर्तव्य यह है कि, यह मनुष्यभव संसार समुद्रका किनारा है यदि हम प्रयत्नशील होकर इस संसार समुद्रसे पार होना चाहें तो थोडेसे परिश्रमसे हम अपने अभीष्ट फलको प्राप्त हो सकते है। और यदि ऐसा मौका पाकरभी हम इस ओर लक्ष्य न देंगे तो सम्भव है कि फिर हम इस अथाह समुद्रके मध्य प्रवाहमें पड़कर डांवाडोल हो जांय। संसारमें समस्त प्राणी सदा यह चाहते रहते हैं कि, हमको किसी प्रकार सुखकी प्राप्ति होवे तथा सदा उसके प्राप्त करनेका ही उपाय

करते रहते हैं। परन्तु अज्ञानवश यथार्थ सुखसे वञ्चित रहकर घोर दुःखमें ही फसे रहते हैं। जिन जीवोंके कर्मभार कुछ हलका होजाता है वे आत्मकल्याणकी खोजमें प्रयत्नशील हो जाते हैं। परन्तु इन खोजियोंमेंसे बहुतसे भोलेजीव ससारमें प्रचलित अनेक मिथ्यामार्गोंमें फसकर अपने अभीष्ट फलको प्राप्त नहीं होते। इस असार संसारमें जैसे सच्चे महात्माओंके सदुपदेशसे सुखका यथार्थ मार्ग प्रचालित है उस ही प्रकार विषय लोलुपोंने भोले जीवोंको ठगनेके लिये बहुतसे मिथ्यामत रूपी जाल बिछा रखे हैं। जिनमें विवेकशून्य महाशय सहजहीमें फस जाते हैं। इस आत्म कल्याणके खोजियोंसे निवेदन है कि, जैसे छदामकी हांडीकोभी चतुर मनुष्य अच्छी तरह ठोक बजाकर ग्रहण करते हैं, उस ही प्रकार आपकोभी चाहिये कि जिस धर्मपर आपके आत्माके कल्याणका दारमदार है, उस धर्मको अच्छी तरह परीक्षा करके ग्रहण करैं। चिरकालसे यह भारतवर्ष विद्यादेवीकी उपासनामें शिथिल होगया था इसी कारण विद्यादेवीभी इससे रुष्ट होकर यूरुप एमेरिका जापानादि देशोंमे विहार करनेको चली गई थी, जिससे यह आरत भारत गारत हो गया। अपना सब गौरव खोकर नितान्त दरिद्रावस्थामें फसकर ज्यों त्यों अपनी मौतके दिन पूरे करने लगा। ऐसी ही अवस्थामें अनेक विषयाशक्तोनें अपने विषय पोषण करनेके लिये अनेक मिथ्या धर्मोंको प्रचलित कर बहुतसे भोले जीवोंको अन्धकूपमें पटक दिया। भारतकी यह शोचनीय दशा देख कुछ सच्चे परोपकारियोंसे नहीं रहा गया और उन्होंने इस निद्राग्रस्त भारतको ढोल बजाबजा-

कर जगाना शुरु कर दिया। हर्षकी बात है कि अब भारत-वासियोंकी आखे खुल गई है और विद्यादेवीका आव्हाननभी हो चुका अब ऐसे शुभ लक्षण दिखाई देने लगे है कि अब शीघ्र ही महारानी विद्यादेवी इस चिर विस्मृत भारतमें पदार्पण करेगी। और यह भारत फिर पहलेकी तरह वैभवयुक्त और आनन्द ध्वनिसे ध्वनित हो जाय। सच्चा आनन्द और मनुष्यजन्मकी यथार्थ सफलता वहीं हो सकती हैं कि, जहां भोग और लक्ष्मीकी आराधनाके साथ २ धर्म देवकीभी उपासना होती हो, नीतिकारोंनेभी ऐसा ही कहा है किः—

त्रिवर्गसंसाधनमन्तरेण पशोरिवायुर्विफलं नरस्य।
तत्रापि धर्मं प्रवरं वदन्ति न तद्विना यद्भवतोऽर्थकामौ॥

भावार्थ— धर्म अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थोंके साधनसे ही मनुष्यजन्मकी सफलता है, उसमेभी धर्म प्रधान है। क्योंकि धर्मके विना अर्थ और काम उपलब्ध नहीं होते है। हर्षका विषय है कि विद्यादेवीकी आवनीमें चतुर भारतवासियोंने पहलेहीसे धर्मकी घोषणाका प्रारम्भ कर दिया है और सच्चे विद्वान् निष्पक्ष दृष्टिसे इस विषयकी खोजमें लग गये हैं कि, इस आत्माका सच्चा कल्याण करनेवाला यथार्थ धर्म कौन है। और अब इन निष्पक्ष महानुभावोंके सामने मिथ्यामतोंकी ढोलकी पोल अधिक कालतक छुपी नहीं रह सकती और ऐसा अच्छा मौका पाकर आज हमभी आपके साम्हने धर्मतत्त्वका विवेचन उपस्थित करते हैं। आशा है कि, आप इसको सावधानतया पढ़कर और उपादेय तत्वको विवेकपूर्वक स्वीकार करके हमारे परिश्रमको सफल करेंगे।

धृ धातुसे धरतीति धर्मः इस प्रकार धर्म शब्दकी व्युत्पत्ति है। अर्थात् ससारके दुःखसे प्राणियोंको निकालकर उत्तम सुखमें धरै उसको धर्म कहते हैं। यह धर्म इस आत्माकी निज विभूति है। इसपर किसी खास समाज या जातिका मौरुसी हक नहीं है। मनोज्ञान सहित पशु पक्षी मनुष्य देव नारकी जीवमात्र इसको धारण करके अपना कल्याण कर सकते है। इस ही कारणसे यह धर्म समस्त प्राणियोंको हितरूप होनेसे सर्वेभ्यो हितः सार्वः इस सार्व विशेषण विशिष्ट सार्वधर्म कहलाता है। अब आगे इस विषयका विवेचन किया जाता है कि, यह जीव इस ससारमें क्यों दुःख भोग रहा है और इस दुःखसे छूटनेका उपाय क्या है।

जब तक द्रव्यसामान्यका स्वरूप ध्यानमें न आ जावे तब तक द्रव्य विशेषका स्वरूप नहीं समझा जा सकता, इस लिये पहले द्रव्य-सामान्यका सक्षिप्त स्वरूप लिखा जाता है। द्रव्य (Mettar) का स्वरूप पूर्व ऋषियोंने इस प्रकार कहा है कि अनेक गुणों (Qualities) के अविष्वग्भाव विशिष्ट अखण्ड पिण्डको द्रव्य कहते है। भावार्थ द्रव्य एक अखण्ड पदार्थ है और वह अनेक कार्य करता है इस कारण कार्यसे अनुमित कारणरूप शक्त्यशोंकी कल्पना की जाती है। इन ही शक्त्यशोंको गुण कहते है। ये गुण उस अखण्ड पिण्ड स्वरूप द्रव्यसे भिन्न सत्तावाले कोई भिन्न पदार्थ नहीं हैं। किन्तु इन गुणोंका जो समुदाय है सोई द्रव्य है और वह द्रव्य है सोई ये गुण है। द्रव्यसे भिन्न गुण नहीं और गुणोंसे भिन्न द्रव्य नहीं है। ससारमें जितने शब्द हैं वे धातुओंसे बने हुए हैं और क्रियावाचक शब्दको ही धातु कहते हैं, तथा क्रिया

गुणकी ही होती है इसलिये प्रत्येक शब्द गुणवाचक है। गुणोंसे भिन्न द्रव्य जब कोई पदार्थ ही नहीं है तो द्रव्यवाचक शब्द ही कहांसे आवेगा जब वक्ताको समस्त गुणोंका समुदायरूप द्रव्य पदार्थ कहना अभीष्ट होता है तो अनेक गुणोंमेंसे किसी एक गुणवाचक शब्दका प्रयोग करके ही द्रव्यका निरूपण करता है और ऐसे समयमें उस वाक्यको सकलादेश वाक्य कहते है। शब्द शास्त्रका मत है कि 'प्रत्यर्थं शब्द निवेशः' अर्थात् प्रत्येक शब्दका अर्थ भिन्न रहे और कोषसे एक पदार्थके वाचक अनेक शब्द प्रतीत होते हैं उसका अभिप्राय यही है कि प्रत्येक पदार्थ अनेक गुणोंका समुदाय है और एक पदार्थ वाचक अनेक शब्द उसके भिन्न २ गुणोंके वाचक है। द्रव्यका निरुपण उसके अशभूत अनेक गुणोंमेंसे किसी एक गुणवाचक शब्दके द्वारा किया जाता है। इसलिये किसी एक वक्ताने उसका निरुपण किसी एक गुणद्वारा किया तो दूसरे वक्ताने उसका निरूपण किसी दूसरे गुणद्वारा और तीसरे वक्ताने किसी तीसरे गुणद्वारा निरूपण किया और इसप्रकार एक द्रव्यवाचक अनेक शब्द होनेसे 'प्रत्यर्थं शब्द निवेशः' इस शब्द शास्त्रके मतसे अविरुद्ध कोषकारने एक द्रव्यवाचक अनेक शब्द लिखे हैं। किन्तु जिस समय एक गुणवाचक एक शब्दसे केवल वही गुण विवक्षित होता है, उस समय उस वाक्यको विकलादेश कहते हैं। सकलादेश और विकलादेश वाक्यकी पहचान प्रकरणवश ज्ञाताकी बुद्धिमत्तापर निर्भर है। एक द्रव्यके अनेक गुणोंमेंसे कुछ गुण ऐसे होते है कि वे समस्त द्रव्योंमें पाए जाते हैं और ऐसे गुणोंको सामान्य गुण कहते हैं।

और इस ही प्रकार कुछ गुण ऐसे पाए जाते हैं जो समस्त द्रव्योंमें नहीं होते और ऐसे गुणोको विशेष गुण कहते हैं। सामान्य गुण यद्यपि अनेक हैं तथापि उनमें छह गुण प्रधान हैं उन ही छह गुणोंका यहापर संक्षिप्त स्वरूप लिखा जाता है। १ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका सदा काल सद्भाव रहे उसको **अस्तित्व** (Existance) गुण कहते हैं। २ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य अर्थात् उसके समस्त गुण प्रति क्षण एक अवस्थाको त्याग अन्य अवस्थाको प्राप्त होते रहें उसको **द्रव्यत्व** गुण कहते हैं। ३ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें अर्थक्रियाकारित्व होय उसको **वस्तुत्व** गुण कहते हैं। ४ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य किसी न किसीके ज्ञानका विषय होय उसको **प्रमेयत्व** गुण कहते हैं। ५ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कुछ संस्थान होय उसको **प्रदेशवत्त्व** गुण कहते है। ६ जिस शक्तिके निमित्तसे वस्तुका वस्तुत्व अवस्थित रहे अर्थात् द्रव्यसे द्रव्यान्तररूप आदिक परिणमन न होकर जलमें कल्लोलकी तरह आप आपरूप ही परिणमें उसको **अगुरुलघुत्व** गुण कहते हैं। जिस समय द्रव्यका निरूपण अस्तित्व गुणकी मुख्यतासे करते हैं तब उसको सत् कहते है। जिस समय द्रव्यका कथन वस्तुत्व गुणकी मुख्यतासे करते हैं उस समय उसको वस्तु कहते हैं। जिस समय उसका प्रतिपादन द्रव्यत्व गुणकी मुख्यतासे करते हैं उस समय उसको द्रव्य कहते हैं। और जिस समय उसका वर्णन प्रमेयत्व गुणकी मुख्यतासे करते हैं उस समय उसको प्रमेय कहते हैं। इसही प्रकार अन्य गुणोंकी अपेक्षासेभी कथन जानना।

द्रव्यके छह भेद है। अर्थात् जीव १, पुद्गल २, धर्म ३, अधर्म ४, आकाश ५ और काल ६। जीव पुद्गल और काल अनेक भेद स्वरूप है और धर्म अधर्म और आकाश ये तीन अनेक भेद स्वरूप न होकर केवल एक २ अखण्ड द्रव्य है। जो गुण अपने समस्त भेदोंमें रहकर अन्य द्रव्यमें न पाया जाय वही विशेष गुण लक्षण स्वरूप होता है और उसहीसे इन द्रव्योंकी पहचान होती है। जीवका लक्षण चेतना है। पुद्गलका लक्षण स्पर्श रस गन्ध और वर्ण है। धर्मका लक्षण गति सहकारित्व है। अधर्मका लक्षण स्थिति सहकारित्व है। आकाशका लक्षण अवगाहन सहकारित्व है। और कालका लक्षण परिणमन सहकारित्व है। इसका खुलासा इस प्रकार है। आकाश द्रव्यमें अवगाहन नामक एक ऐसा गुण है जो समस्त द्रव्योंको युगपत् अवकाश देनेमें समर्थ है। आकाश द्रव्य सर्वव्यापी है तथा शेष पाच द्रव्य कुछ थोड़ेसे आकाशमें रहते हैं। जितने आकाशमें शेष पांच द्रव्य रहते है उतने आकाशको लोकाकाश और शेष आकाशको अलोकाकाश कहते हैं। अलोकाकाशमें केवल आकाश ही है दूसरा द्रव्य कोई नहीं है। उपादान निमित्त प्रेरक उदासीन आदि अनेक कारणोंके मिलनेपर कार्य होता है। जिस प्रकार मछलीके गमनको जल उदासीन कारण है उसही प्रकार गति विशिष्ट जीव पुद्गल (शेष चार द्रव्य गतिरहित अचल हैं) को गमनमें उदासीन कारण धर्मद्रव्य (अचेतन) है। तथा जिस प्रकार गमन करते हुए पुरुषको स्थितिमें उदासीन कारण पृथ्वी है उस ही

प्रकार गतिपूर्वक स्थितिरूप परिणत जीव पुद्गलोंको अधर्म द्रव्य (अचेतन) उदासीन कारण है। यह दोनों द्रव्य समस्त लोकाकाशमें व्याप्त है। समस्त द्रव्योंके परिणमनमें उदासीन कारण काल द्रव्य है। इस काल द्रव्यके असख्यात भेद है और एक २ काल द्रव्य लोकाकाशके एक २ प्रदेश (एक पुद्गल परमाणु जितने आकाशको रोकता है उतने आकाशको प्रदेश कहते है) पर रत्नोंकी राशिकी तरह स्थित है। चेतना उस गुणको कहते हैं कि, जिससे यह जीव समस्त पदार्थोंको जानता है। यह चेतना गुण समस्त जीवोंमें है और पुद्गलादिक पाच द्रव्योंमें नहीं है। इस लिये जीव द्रव्य चेतन है और शेप पांच द्रव्य अचेतन है। स्पर्श रस गन्ध और वर्ण ये चार गुण केवल पुद्गल और पुद्गलके सर्व भेदोंमें पाये जाते हैं और शेष पांच द्रव्योंमें ये गुण नहीं है इसलिये पुद्गल मूर्त्त द्रव्य है तथा शेप पाच द्रव्य अमूर्त है। पुद्गल द्रव्यके दो भेद हैं एक परमाणु और दूसरा स्कन्ध। पुद्गलके सबसे छोटे खण्डको परमाणु (Atom) कहते हैं। अनेक परमाणुओंके पिण्डको स्कन्ध कहते हैं। स्कन्धके २२ भेद हैं। उनमेंसे केवल पांच भेद रूप स्कन्धोंका जीवसे बन्ध होता है और शेष स्कन्धोंका जीवसे बन्ध नहीं होता है। उन पाच स्कन्धोंके नाम इस प्रकार है। आहारवर्गणा १, तैजसवर्गणा २, भाषावर्गणा ३, मनोवर्गणा ४ और कार्माणवर्गणा ५। जीव द्रव्यके दो भेद हैं। मुक्त और ससारी। ससारीके दो भेद हैं। त्रस और स्थावर। स्थावरके पांच भेद हैं। पृथ्वी १,

जल २, अग्नि ३, पवन ४ और वनस्पति ५। इन पाचों ही स्थावरोंके केवल एक स्पर्शनेन्द्रिय होती है। जिनके स्पर्शन और रसना दो इन्द्रिय होती हैं उनको द्वीन्द्रिय और जिनके घ्राण सहित तीन इन्द्रिय होती है उनको त्रीन्द्रिय तथा जिनके नेत्र सहित चार इन्द्रिय होती है उनको चतुरिन्द्रिय और जिनके श्रोत्र साहित पाच् इन्द्रिय होती हैं उनको पञ्चेन्द्रिय कहते है। द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय इन चारों प्रकारके जीवोंको ही त्रस जीव कहते हैं। पञ्चेन्द्रियके दो भेद हैं। सञ्ज्ञी और असञ्ज्ञी। जिनके मन होय उनको सञ्ज्ञी और जिनके मन नहीं होय वे असंज्ञी कहलाते है। चतुरिन्द्रिय पर्यन्त सव जीव असञ्ज्ञी ही होते हैं। सञ्ज्ञी जीवोंके चार भेद हैं। मनुष्य १, तिर्यञ्च (पशु) २, देव ३ और नारकी ४। असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त समस्त जीव तिर्यञ्च ही कहलाते हैं।

'मूल नास्ति कुतः शाखा' इस वाक्यको अवलम्बन करके हमारे बहुतसे भाइयोका कथन इस प्रकार है कि, यह बन्ध मोक्ष आदिकका कथन तव युक्तिसगत हो सकता है जब जीवकी सत्ता सिद्ध होजाय। जीवकी सत्ताकी सिद्धिके विना यह सव कथन आकाश पुष्पवत् है। ऐसी शङ्का होनेपर हमभी उचित नहीं समझते कि इस शङ्काका समाधान किये विना आगे बढें इसलिये अब जीव द्रव्यकी सत्ता न्याय (Logic) से सिद्ध की जाती है। आगेभी तत्त्वके विवेचनमें अनेक शङ्कायें उठेंगी और उनकाभी समाधान न्यायकी रीतिसे ही किया जायगा। इसलिये जिन महाशयोंने न्यायशास्त्रका कुछ अभ्यास किया है, वे ही इस

निवन्धके समझनेके अधिकारी है। जिन महाशयोंने न्यायका अभ्यास विल्कुल नहीं किया है उनसे प्रार्थना है कि, वे कमसेकम हेतु और हेत्वाभासका स्वरूप अवश्य जान लें। न्यायके इतनेसे ज्ञानके विना इस निवन्धके पढनेवाले कृत कार्य्य नहीं हो सकते।

मे सुखी हू, मैं दु·खी हू, मैं राजा हू, मे रक हू, इत्यादिक स्वसवेदन प्रत्यक्षमें 'मै' शव्दका वाच्य जीव ही है अर्थात् जिसको सुख दुःखादिकका अनुभव होता है वही जीव पदार्थ है, इसलिये जीव पदार्थका अनुभव प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध है। अथवा जीवच्छरीर सात्मक प्राणादिमत्त्वात् प्रश्नोत्तर दातृत्वाच्च घटादिवत् अर्थात् जिन्दा शरीर आत्मासहित है क्योंकि श्वासोच्छ्वासवाला है, जो २ पदार्थ श्वासोच्छ्वास सहित नहीं हैं सो आत्मा सहितभी नहीं हैं, जैसे घटादिक। अथवा जिन्दा शरीर आत्मासहित है क्योंकि वह प्रश्नका उत्तर देता है जो २ पदार्थ प्रश्नका उत्तर नहीं देता वह आत्मा साहितभी नहीं है जैसे घटादिक। इस प्रकार केवल व्यतिरेकी अनुमान प्रमाणोंसेभी जीवका अस्तित्व सिद्ध होता है। यहा शकाकार फिर कहता है कि, उपर्युक्त प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाणोंसे जीवका अस्तित्व सिद्ध है यह तो हम स्वीकार करते है, परन्तु इस प्रकारके जीवका अस्तित्व गर्भसे लगाकर मरणपर्यन्त ही प्रतीत होता है। गर्भसे पहले और मरणके पश्चात् जीवका अस्तित्व प्रतीत नहीं होता। इस शकाका समाधान इस प्रकार है कि जीव अनादि निधन है, क्योंकि यह अस्तित्ववान् होनेपर कारण जन्य नहीं है। जो २ पदार्थ अस्तित्ववान् होनेपर कारण जन्य नहीं होते वे २ नित्य होते हैं, जैसे

पृथ्वी आदि। और जो २ अस्तित्ववान् होनेपर कारणजन्य होते हैं वे २ नित्य नहीं होते, जैसे घटादिक। इसप्रकार अनुमान प्रमाणसे जीव पदार्थ अनादि निधन सिद्ध होता है। अब यहां शकाकार फिर कहता है कि, यह हेतु भागासिद्ध नामक हेत्वाभास है। क्योंकि हेतुका कारण जन्यत्वाभाव अश प्रसिद्ध है अर्थात् जीव भूतचतुष्टय जन्य है (समाधान) भूत चतुष्टय जीवके निमित्त कारण है या उपादान कारण? यदि निमित्त कारण हैं तो भूत चतुष्टयसे भिन्न उपादान कारण कोई दूसरा ही ठहरा और जो वे उपादान कारण है वही जीव पदार्थ है। और यदि भूत चतुष्टय जीवका उपादान कारण है तो पृथ्वी आप् तेज और वायु ये चारों पदार्थ भिन्न २ जीवके उपादान कारण हैं, या चारों मिलकर जीवके उपादान कारण हैं? यदि भिन्न २ जीवके कारण हैं तो पृथ्वीके बनेहुए जीव दूसरे और जलके बने हुए दूसरे तथा पवनके बनेहुए अन्य और अग्निके बनेहुए अन्य इसप्रकार चार तरहके जीव होने चाहिये। परतु इसप्रकार चार तरहके जीव प्रतीत नहीं होते इसलिये भूत चतुष्टय भिन्न २ रीतिसे कारण नहीं हैं। यदि चारों मिलकर जविके उपादान कारण है तो भी युक्तिसगत नहीं है। क्योंकि घटपटादिक कार्योंका उपादान कारण सजातीय होता है, इसलिये यदि जीवका उपादान कारण भूतचतुष्टय है तो भूत चतुष्टयके स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुण जीवमे आने चाहिये थे। परंतु जीवमें स्पर्श रस गन्ध वर्ण ये चार गुण नहीं है, यदि ये चारगुण जीवमें होते तो जैसे पृथ्वी आप् तेज वायु चार गुणसहित

होनेसे वे स्वय तथा घटपटादिक उनके कार्य इन्द्रियगोचर होते हैं उस ही प्रकार जीवभी इन्द्रियगोचर होता। परन्तु जीव इन्द्रिय गोचर नहीं है, इसलिये जीव भूतचतुष्टयजन्य नहीं है। यदि कहो कि पृथ्वी आप् तेज वायुका कार्यभूत यह शरीर इन्द्रिय गोचर है और शरीर ही जीव है सोभी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेसे मृतक शरीरमें भी जीवका प्रसग आवेगा। इस प्रकार हेतुमें भागासिद्ध दोष नहीं आ सकता। अथवा जीव अनादि निधन है क्योंकि तत्काल जात बालकके दूध पीनेकी आकांक्षा होती है। यह हेतु असिद्धभी नहीं है क्योंकि दूध पिलानेसे बालक रोनेसे बन्द होजाता है। आकाक्षा उस ही पदार्थमें होती है जिसका पहिले अनुभव किया हो और पूर्व अनुभव सिद्ध होनेसे जीवकाभी जन्मसे पहले अस्तित्व सिद्ध होता है। अथवा अनेक मनुष्योंको पूर्वभवके वृत्तान्तका जातिस्मरण होता है और उसकी सत्यताकी अनेक महाशयोंने अच्छी तरह परीक्षा की है। तथा अनेक समाचारपत्रोंमेंभी इस विषयके लेख निकल चुके हैं। अथवा अनेक मनुष्य मरण प्राप्त करके भूतादिक देव योनिमें उत्पन्न होते हैं और वे अपनेको मनुष्य शरीर त्यागकर वहा उत्पन्न हुवा बताते हैं। इस विषयकेभी अनेक लेख समाचार पत्रोंमें प्रकाशित हो चुके हैं। अथवा गुजरात प्रातमें एक मोहम्मद छैल नामक महाशय हैं जिनको कि कोई देव सिद्ध है। उन्होंने अनेकवार ऐसे २ कार्य करके दिखाये हैं कि जो मनुष्यशक्तिके सर्वथा बाहर हैं। जैसे चलती हुई मेलट्रेनको रोक देना। ये महाशय अभी विद्यमान हैं प्रायः करके

आप गुजरात प्रान्तमें घूमते रहते है, यदि किसी महाशयको उपर्युक्त कथनमें सशय हो तो वे प्रत्यक्ष मिलकर उनसे अपना संशय दूर करसकते हैं। इन सबका खुलासा इस प्रकार है कि समस्त द्रव्योमें अस्तित्व नामक एक सामान्य गुण है। उस गुणका कार्य यह है कि जो द्रव्य है वह हमेशासे है और हमेशातक रहेगा अर्थात् सत् (Existence) का कभी विनाश (No Existence) नहीं होता और असत् (No Existence) का कभी उत्पाद (Existence) नहीं होता। भावार्थ- जो पदार्थ है वह हमेशासे है और हमेशातक रहेगा और जो नहीं है वह हमेशासे ही नहीं है और आगेभी हमेशातक कभी भी नहीं होगा। संसारमे जो अनेक पदार्थोंका उत्पाद और विनाश दीखता है वह केवल भ्रम है न किसीकी उत्पात्ति होती है और न किसीका विनाश होता है। ससारमें जो घटका विनाश और घटकी उत्पात्ति यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है उसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि, द्रव्य एक आकारसे दूसरे आकारमें हो गया। अर्थात् पहले मृत्तिका द्रव्य पिण्डाकारमें था सो घटाकार होगया इसहीको घटोत्पत्ति कहते हैं और जो घटाकारको छोडकर कपालाकारमें होगया उसहीको घटका विनाश कहते हैं। वास्तवमें न कोई पदार्थ नष्ट हुवा है और न कोई पदार्थ उत्पन्न हुआ है। पहले जैसा लिख आये है कि, द्रव्यमें एक द्रव्यत्व नामक गुण है जिसके निमित्तसे समस्त सत्-रूप पदार्थ प्रतिक्षण एक २ अवस्थाको छोडकर अवस्थान्तरको प्राप्त होते रहते है। न किसीका नाश होता और न किसीकी उत्पत्ति होती है। इसहीको आधुनिक फिलासफ़ीमें **विकाश** सिद्धान्त

कहते हैं। प्रत्येक द्रव्य अखण्ड है न तो कभी अखण्ड द्रव्य खण्ड-रूप होता है और न कभी उसकी उत्पत्ति या विनाश होता है। उस अखण्ड द्रव्यके कल्पित अंशरूप गुण (Qualities) भी सदाकाल अस्तित्वरूप रहते है। उनकाभी कभी उत्पत्ति विनाश नहीं होता। किन्तु द्रव्यकी तरह वे भी प्रतिक्षण एक अवस्थासे अवस्थान्तरको प्राप्त होते हुए कथञ्चित् नित्यानित्यात्मक हैं। इस अवस्थासे अवस्थान्तर होनेको ही परिणमन कहते है और यही द्रव्यत्व गुणका कार्य है। और इन अवस्थाओंमेंसे प्रत्येक अवस्थाको पर्याय कहते है। जीवके अस्तित्वको स्वीकार करके भी जो महाशय जीवको एक स्वतन्त्र द्रव्य नहीं मानते हैं, उनसे पूछा जाता है कि जो जीव द्रव्य नहीं है तो जीव गुण है या पर्याय है। इनसे अतिरिक्त कोई वाच्य हो ही नहीं सकता। क्योंकि जितने वाच्य पदार्थ हैं वे द्रव्य गुण और पर्याय इन तीनोमेंसे किसी न किसीके वाच्यमें अन्तर्भूत" हो जायगे। यदि जीव गुण है तो उसका गुणी कौन है? गुणीके विना गुण होता नहीं। यदि कहोगे कि जीव गुण का गुणी जीव द्रव्य है तो जीव द्रव्य स्वतन्त्र सिद्ध हुआ। यदि कहोगे कि जीव गुण पुद्गल द्रव्यका है तो गुण नित्य होता है, इसलिये घटपटादिक समस्त पुद्गल द्रव्योंमे उसकी प्रतीति होनी चाहिये। परन्तु प्रतीति होती नहीं इसलिये जीव पुद्गलका गुण नहीं है। यदि जीव पर्याय है तो पर्याय किसी गुणकी अवस्था विशेषको कहते हैं, इसालिये फरमाइये कि वह जीव पर्याय पुद्गलके कौनसे गुणकी अवस्था विशेष है और उस गुणका नाम क्या है? तथा उसका लक्षण क्या है? प्यारे भाइयो न तो कोई ऐसा गुण ही

है और न कोई उसका लक्षण ही है और यदि है तो कोई बतावे और प्रमाण कसौटीपर उसकी परीक्षा करावे। इस ससारमें अनेक मास मदिराके लोलुपोंने जीवके अस्तित्वको कुयुक्तियोंके आवरणसे छिपाकर जीव दयाके सिद्धान्तको मटियामेट करनेके लिये भोले भाइयोंको मिथ्या जालमें फसाया है। हमारे भोले भाई मिथ्या दृष्टान्तोंमें उलझकर सनातन सिद्धान्तोंसे च्युत होते हैं। यह नहीं समझते कि केवल दृष्टान्त साध्यकी सिद्धि करनेमें समर्थ नहीं है जब तक समीचीन हेतु उपस्थित नहीं किया जायगा तव तक साध्यकी सिद्धि नहीं हो सकती। रसोई घरमें धूआ और अग्निको साथ देखकर कोई यह व्याप्ति बनालेवे कि, जहा २ अग्नि होती है वहा २ धूम होता है तो उसके इस सिद्धान्तको कोई भी बुद्धिमान् स्वीकार नहीं कर सकता। क्योंकि तप्त लोहेके गोलेमें धूम रहित अग्नि दीखती है। जीवके अस्तित्वको लोप करनेवाले महात्माओंने भोले भाइयोंको भ्रममें डालनेवाले अनेक कुदृष्टात दे रखे हैं, उनमेंसे नमूनेके वास्ते एक दृष्टान्त और उसकी समीक्षा यहापर दिखलाई जाती है। उन महाशयोंका कहना है कि जैसे गुड महुआ आदिक अनेक पदार्थोंके मिलानेसे मदिरामें नशेकी शक्ति हो जाती है उस ही प्रकार पृथ्वी जलादिक अनेक पदार्थोंके मिलनेसे पुद्गलमें चेतना शक्ति हो जाती है। प्यारे पाठको! जरा स्वस्थ चित्तसे विचारिये कि पृथ्वीआदिक अनेक द्रव्योंके परमाणुओंमें जो चेतनाशक्ति उत्पन्न हुई है वह चेतनाशक्ति किसी खास परमाणुमें हुई है या समस्त परमाणुओंमें हुई है? अथवा उन समस्त परमाणुओंसे भिन्न कोई

नवीन पदार्थ उत्पन्न हुआ है। यदि कहोगे कि किसी एक परमाणुमें चेतनाशक्ति उत्पन्न हुई है तो यह बात युक्तिसे असंगत है। क्योंकि सयोगका फल सयुक्त पदार्थोंके समस्त अशोमें होता है। यदि कहोगे कि समस्त परमाणुओंसे भिन्न एक नवीन पदार्थ उत्पन्न हो गया है तो असत्के उत्पादका प्रसग आवेगा। यदि कहोगे कि समस्त परमाणुओंमे वह शक्ति होगई है तो शरीरके समस्त अगोंको काटकर भिन्न करने पर नाक को सूघनेका काम जिन्हाको चखनेका काम कानको सुननेका काम हाथको लिखनेका काम और पैरोकों चलनेका काम करना चाहिये था। जैसे कि एक वोतल मदिरा किसीने तयार की तो उसमें जो नशेकी शक्ति हैं वह उसके समस्त परमाणुओंमें हुई है, इसलिये उसमेंसे अगर किसीको एक प्यालाभी भिन्न करके पिलाई जावे तो वह भी नशा करती है। परन्तु शरीरके भिन्न २ अग इस प्रकार कार्य नहीं करते हैं। यदि कहो कि शरीरके अग भिन्न २ होनेसे वह चेतनाशक्ति नष्ट हो जाती हैं तो मदिराकी नशेकी शक्ति क्यों नष्ट नहीं होजाती। यदि कहो कि दृष्टान्त सब अंशोंमें नहीं मिलता तो हमभी तो विवाद ग्रस्त अशमें ही मिलान करते हैं। खैर मानभी लिया जाय कि खण्ड होनेपर वह शक्ति नष्ट हो जाती है तो अनेक पुरुषोंके हस्तादिक एक २ अग नष्ट होनेपर शेष अगोंमें चेतनाशक्ति क्यों दीखती है। और यदि कहो कि छोटे टुकडेकी शक्ति नष्ट हो जाती है और बडेकी नष्ट नहीं होती सोभी क्यों? हमभी विपक्षमें कह सकतेहै कि बड़ेकी नष्ट होजानी चाहिये और छोटेकी नष्ट नहीं होती। तथा छोटे

टुकड़े मस्तकके जुदा होने पर वडे टुकडे खण्डमेंभी वह शक्ति नहीं रहती। इत्यादि विचार करनेसे दोष ही दोष नजर आते हैं। प्यारे भाइयो! जरा विचार करके देखो तो गुड़ महुवा आदिक अनेक पुद्गल द्रव्योके मिलानेसे जो मदिरा बनी है उसमें कौनसा नशा उत्पन्न होगया। यदि मदिरामें नशा उत्पन्न हुआ होता तो वोतल उछलती फिरती। प्यारे भाइयो! मदिराके उपादान कारणोमें जो स्पर्श रस गध और वर्ण मौजूद थे वे ही वर्णादिक गुण ही कुछ तारतम्य अवस्थाको प्राप्त होकर केवल अवस्थासे अवस्थान्तररूप हुए हैं, उनके निमित्तसे जीवका चेतनागुण विकृत होकर उन्मत्त अवस्थाको प्राप्त होत है। मदिरामें कोई भी नवीन चीज उत्पन्न नहीं हुई है। इस प्रकार अनेक प्रकारसे परीक्षा करनेपर यही वात निर्विवाद सिद्ध होती है कि, जीव एक स्वतन्त्र द्रव्य अनादि निधन है। न कभी इसकी उत्पत्ति होती है और न कभी इसका नाश होता है किन्तु अवस्थासे अवस्थान्तर होती रहती है और यही युक्ति और अनुभव सिद्ध होता है।

जीव द्रव्यके मुक्त और ससारी इस प्रकार दो भेद पहले कह आये है। परन्तु बहुतसे महाशय इस विषयमें सहमत न होकर फरमाते हैं कि ऐसा नहीं है किंतु चेतन द्रव्यके दो भेद है। एक परमात्मा और दूसरा जीवात्मा परमात्मा सर्वज्ञ सर्वव्यापी सर्व-शक्तिमान अनादि शुद्ध जगतका कर्ता हर्ता जीवात्मासे नितान्त भिन्न सच्चिदानद है। और जीवात्मा अल्पज्ञ इच्छा द्वेष प्रयत्न सहित अनेक द्रव्य हैं। ऐसे महाशयोंसे निवेदन है कि, वे पहले ऐसे ईश्वरकी सत्ता सिद्ध करलें पीछे उसके विशेष धर्मों-

पर विचार किया जायगा, उस ईश्वरकी सत्ता सिद्ध करनेके लिये ये महाशय इस प्रकार अनुमान प्रमाण उपस्थित करते हैं। पृथ्वी सूर्य चन्द्रादयः ईश्वरजन्याः मनुष्य जन्यत्वे सति कार्यत्वात्। अर्थात् पृथ्वी चन्द्र सूर्यादिक ईश्वरजन्य हैं क्योंकि मनुष्य कर्तृक न होकर कार्य है जो २ मनुष्यके अजन्य होनेपर कार्य नहीं है वे २ ईश्वर जन्य भी नहीं हैं। जैसे आकाशादिक, इस प्रकारके केवल व्यतिरेकी अनुमानसे ईश्वरकी सत्ता सिद्ध होती है। अब आगे इस अनुमितिका विवेचन किया जाता है। इस अनुमितिके हेतुमें जो कार्य पद पडा है यदि कार्यका लक्षण प्रागभावका प्रतियोगी माना जाय तो हेतु भागासिद्ध नामक हेत्वाभास है। क्योंकि सूर्य चन्द्रादिकका अभाव पहले सिद्ध हो जाय तव उनमें कार्यत्व हेतु सिद्ध हो। अथवा कार्यत्व हेतु व्यभिचारी नामक हेत्वाभास है। क्योंकि घासादिक कार्य होनेपरभी कर्तृजन्य नहीं हैं। यदि कहोगे कि घास साध्य कोटिमें पडा हुआ है इसलिये हेतु व्यभिचारी नहीं है। तो महाशयजी पहले आप यह वताइये कि आपके साध्यमें जो ईश्वर जन्यत्व पद है उससे आपको क्या अभिप्रेत है। क्या ईश्वर घटको वनानेवाले कुम्भकारकी तरह सूर्यादिकके उपादान कारण भूत परमाणुओंके एकत्रित करके उनको सूर्यादिकके आकाररूप वनाता है अथवा व्यूह रचनेवाले सेनापतिकी तरह परमाणुओंको आज्ञा देता है कि, जिसको सुनते ही सव परमाणु सूर्यादिकके आकार होजाते हैं। और या ईश्वरके ऐसी इच्छा होती है कि इन परमाणुओंके सूर्यादिक वनजाय और उसकी ऐसी इच्छा होते ही वे परमाणु स्वय सूर्यादिकके आकार

होजाते हैं। यदि प्रथम पक्ष मानाजाय अर्थात् सूर्योदिकके उपादान कारणभूत परमाणुओंको एकत्रित करके ईश्वर उनको सूर्योदिकके आकार वनाता है तो हेतु अनुमानवाधित (सत्प्रतिपक्ष) हेत्वाभास है। क्योंकि उसके साध्यके अभावका साधक अनुमानान्तर विद्यमान है। और वह अनुमान इस प्रकार है। ईश्वर परमाणुओंको एकत्र करके सूर्योदिकको नहीं वनाता, क्योंकि वह क्रिया रहित है, जो २ क्रियारहित होता है वह २ परमाणुओंको एकत्र नहीं करसकता जैसे आकाशादिक। यह हेतु असिद्ध भी नहीं है क्योंकि उसकी सत्ता अनुमानान्तरसे सिद्ध है। जैसे ईश्वर क्रियारहित है क्योंकि वह सर्वव्यापी है जो २ सर्वव्यापी होते हैं वे २ क्रिया रहित होते हैं जैसे आकाशादिक। यदि दूसरा पक्ष मानाजाय अर्थात् ईश्वरकी आज्ञासे परमाणु सूर्योदिकके आकार होजाते हैं तो भी पूर्वोक्त दोष आता है। क्योंकि ईश्वर शब्द रहित है इसलिये आज्ञा नहीं दे सकता। यदि ईश्वर शब्दसहित मानाजाय तो सव झगड़ा वहुत जल्दी तय हो सकता है। ईश्वर शब्द द्वारा सवको अपनी सत्ता सिद्ध करा सकता है। परन्तु खेदके साथ लिखना पड़ता है कि अनेक प्रार्थना करनेपर भी ईश्वर एक भी प्रश्नका उत्तर नहीं देता। जिस प्रकार ईश्वरमें शब्दोच्चारणकी शक्ति नहीं है उस ही प्रकार परमाणुओंमें शब्द सुननेकी शक्ति नहीं है। क्योंकि वे जड़ हैं। तथा कर्ण इन्द्रिय रहित हैं। यदि तीसरा पक्ष माना जाय अर्थात् ईश्वरकी इच्छा होनेमात्रसे परमाणु सूर्योदिकके आकार होजाते हैं सोभी युक्ति सगत नहीं है। क्योंकि परमाणुओंको ईश्वरकी इच्छाका ज्ञान नहीं हो सकता।

अथवा ऐसी इच्छा ईश्वरका स्वभाव है या विभाव। यदि कहोगे ऐसी इच्छा ईश्वरका स्वभाव है तो स्वभाव नित्य होता है, तो जिस समय ईश्वरके सूर्यादिक रचनेकी इच्छा हुई उससे पहलेभी ईश्वरके ऐसी इच्छाका सद्भाव हुआ और जब पहले ही ईश्वरके इच्छा थी तो सूर्यादिक भी पहलेही बन चुके थे बनेहुयेको क्या बनाया। अथवा ईश्वर जब हमेशासे है तो उसका स्वभावरूप इच्छा भी अनादिसिद्ध हुई और इच्छाके अनादिसिद्ध होनेपर उसके कार्य सूर्यादिक भी अनादिसिद्ध हुए। यदि उस इच्छाको विभाव माना जाय तो ईश्वर शुद्ध नहीं ठहर सकता। क्योंकि विभाव भाव अशुद्ध द्रव्यके ही होते हैं। तथा इच्छा अनुपलब्ध पदार्थकी उपलब्धिके लिये होती है इसलिये इच्छा दुःखात्मक होनेसे ईश्वरके दुःखी होनेका प्रसग आता है। इस प्रकार कार्यत्वहेतुमें जो घासादिकमें व्यभिचार दिखाया था और उसपर शंकाकारने घासको साध्य कोटिमें डाल दिया था सो घास साध्य कोटिमें नहीं जा सकता क्योंकि ईश्वरके कर्तृत्वमें जो तीन पक्ष दिखाये वे तीनों ही बाधित हैं। इसलिये घासका यदि कोई कर्त्ता कल्पना किया जाय तो वह कर्त्ता वैसा ही कृषाण होगा जैसा कि गेंहू चने वगैरके खेतोंको जोतनेवाला कृषाण होता है। परन्तु घासका पैदा करनेवाला ऐसा कोई कृषाण प्रतीत नहीं होता है। इसलिये हेतु व्यभिचारी है। अथवा कार्यत्व हेतु सत्प्रतिपक्ष नामक हेत्वाभास है क्योंकि साध्यके अभावका साधक अनुमानान्तर विद्यमान है। वह अनुमान इस प्रकार है। सूर्यादिक ईश्वर कारणक (जन्य) नहीं हैं। क्योंकि सूर्यादिकका ईश्वरके साथ अन्वय व्यतिरेक घटित नहीं

होता। जिसका जिसके साथ अन्वय व्यतिरेक घटित नहीं होता वह तत्कारणक नहीं होता। जैसे आकाशका घटके साथ अन्वय व्यतिरेक घटित नहीं होता है इसलिये घट आकाश कारणक नहीं है। सूर्यादिकका भी ईश्वरके साथ अन्वय व्यतिरेक घटित नहीं होता इसलिये सूर्यादिक ईश्वर कारणक नहीं हैं। कार्यके सद्भावमें कारणके सद्भावको अन्वय कहते हैं। तथा कारणके अभावमें कार्यके अभावको व्यतिरेक कहते हैं। अन्वय व्यतिरेक भाव और कार्य कारण भावमें परस्पर गम्य गमक सम्बन्ध है। सोई न्याय सिद्धान्तकारोंने कहाहै कि— "अन्वय व्यतिरेक गम्योहि कार्य कारणभावः" यद्यपि सूर्यादिकके सद्भावमें ईश्वरका सद्भाव होनेसे अन्वय तो घटित होजाता है। परन्तु क्षेत्र व्यतिरेक अथवा काल व्यतिरेक इन दोनों व्यतिरेकोंमेंसे एक भी व्यतिरेक घटित नहीं होता। इसका खुलासा इस प्रकार है कि, यदि यह बात सिद्ध होजाती कि जहां १ ईश्वर नहीं है वहा २ सूर्यादिक भी नहीं है तो ईश्वर और सूर्यादिकमें क्षेत्र व्यतिरेक सिद्ध हो जाता। परन्तु ईश्वर सर्वव्यापी है इसलिये उसका कहीं भी अभाव न होनेसे क्षेत्र व्यतिरेक घटित नहीं होता। तथा इस ही प्रकार जब यह बात सिद्ध होजाती कि जबजब ईश्वर नहीं है तबतब सूर्यादिक भी नहीं हैं तो काल व्यतिरेक सिद्ध होजाता। परन्तु ईश्वर नित्य द्रव्य है इस लिये उसका कभी भी अभाव न होनेसे सूर्यादिकके साथ उसका काल व्यतिरेक सिद्ध नहीं होता। इसलिये अन्वय व्यतिरेक घटित न होनेसे सूर्यादिक ईश्वर कारणक नहीं हैं। यदि कार्यत्वका

लक्षण सावयवत्व माना जाय तो सावयत्वके दो अर्थ होते हैं। अर्थात् अवयवोंसे वनाहुआ या अवयववान्। यदि प्रथम पक्ष माना जाय तो हेतु साध्य सम नामक हेत्वाभास है और यदि द्वितीय पक्ष माना जाय तो ईश्वर तथा आकाशादिक नित्य द्रव्यमें अवयववानपना होनेसे हेतु व्यभिचारी है। यदि कार्यका लक्षण कृतवुध्द्युत्पादक अर्थात् यह किया हुआ है ऐसी बुद्धि उत्पन्न करनेवाला माना जाय तो कहींपर गढा खोदनेसे उस खुदेहुए गढेको देखनेवालेके इस गढेका आकाश किसीने किया है ऐसी वुद्धि उत्पन्न होती है इस लिये आकाशमें वृत्ति होनेसे हेतु व्याभि-चारी है। यदि कार्यत्वका लक्षण विकारित्व किया जाय तो विकारित्वकी वृत्ति ईश्वरमें होनेसे हेतु व्यभिचारी है। ईश्वरके अस्तित्वमें दूसरा अनुमान प्रमाण इस प्रकार दिया जाता है कि ईश्वर है क्योंकि जीवोंके कर्मफल प्राप्तिकी अन्यथा अनुपपत्ति है। सो यह हेतु भी असिद्ध नामक हेत्वाभास है। क्योंकि विषा-दिक भक्षण करनेवालोंको मरणादिक फल विना किसी फलदा-ताके ही मिल जाताहै। यदि कहोगे कि विषादिक भक्षणका फल भी ईश्वर ही देता है। क्योंकि जीव कर्मोंके करनेमें तो स्वतन्त्र है। परन्तु उनके फल भोगनेमें परतन्त्र है। सो भी युक्ति सगत नहीं है। क्योंकि जैसे किसी धनाढ्यने ऐसा कर्म किया था कि, जिसका फल उसका धन हरण होनेसे मिल सकता है। ईश्वर स्वय तो उस धनको चुरानेके लिये आता नहीं, किन्तु किसी चोरके द्वारा उसका धन हरण कराता है। ऐसी अवस्थामें अर्थात् जब कि एक चोरने एक धनाढ्यका धन हरा तो इस

एक क्रियासे धनाढ्यको तो पूर्वकृत कर्मका फल मिला और चोरने नवीन कर्म किया। अब फरमाइये कि चोरने जो यह धनाढ्यके धन हरणरूप क्रिया की है वह स्वतन्त्रतासे की है या ईश्वरकी प्रेरणासे की है। यदि स्वतन्त्रातासे की है और ईश्वरकी उसमें कुछ भी प्रेरणा नहीं है। तो धनाढ्यको जो कर्मका फल मिला वह ईश्वरकृत नहीं हुआ। और जो ईश्वरकी प्रेरणासे चोरने धन हरा है तो चोर कर्मके करनेमें स्वतन्त्र नहीं रहा और चोर निर्दोष हुआ और उस ही चोरको वही ईश्वर राजाकेद्वारा चोरीका दण्ड दिलाता है तो पहले तो स्वयं उससे चोरी कराई और फिर स्वयं ही उसको दण्ड दिलाता है यह ईश्वरके न्यायमें बड़ा भारी बट्टा लगा। संसारमें जितने अनर्थ होते हैं उन सबका विधाता ईश्वर ठहरेगा। परन्तु उन सब कर्मोंका फल विचारे निर्दोष जीवोंको भोगना पड़ेगा। देखा! कैसा अच्छा न्याय है अपराधी ईश्वर और दण्ड भोगें जीव। इस प्रकार प्रमाणकी कसौटीपर कसनेसे ऐसे कल्पित ईश्वरकी सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती। प्यारे पाठको! जरा निष्पक्ष दृष्टिसे विचारिये कि इस संसारमें अनादि कालसे समस्त द्रव्य प्रतिक्षण एक २ अवस्थाको त्यागकर अन्य २ अवस्थाको प्राप्त होते रहते हैं। इस परिण मनको ही क्रिया कहते हैं। अनन्तर पूर्वक्षणवर्ती परिणाम विशिष्ट द्रव्य उपादान कारण है और अनन्तर उत्तर क्षणवर्ती परिणाम विशिष्ट द्रव्य कार्य है। इस परिणमनमें सहकारी स्वरूप अन्य द्रव्य निमित्त कारण है। निमित्त कारण दो प्रकारके होते है एक उदासीन निमित्त कारण और दूसरा प्रेरक

निमित्त कारण इनही कारणोंमे कारक व्यवहार है। क्रिया निष्पादकत्व कारकका लक्षण है। कारकके छह भेद हैं। अर्थात् कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। क्रियाके उपादान कारणको कर्ता कहते हैं। क्रिया जिसको प्राप्त हो उसे कर्म कहते हैं। क्रियामें साधकतम अन्य पदार्थको कारण कहते हैं। कर्म जिसको प्राप्त हो उसे सम्प्रदान कहते हैं। दो पदार्थोंके वियोग होनेमें जो ध्रुव रहे उसको अपादान कहते हैं। आधारको अधिकरण कहते हैं। इस कथनका अभिप्राय यह है कि ससारमें जितने पदार्थ हैं वे अपने २ भावके कर्त्ता हैं परभावका कर्त्ता कोई पदार्थ नहीं है। वास्तवमें कुंभकार घट बनानेरूप अपनी क्रियाका कर्त्ता है। व्यवहारमें जो कुभकारको घटका कर्त्ता कहते हैं वह केवल उपचार मात्र है। घट बननेरूप अपनी क्रियाका कर्त्ता घट है। घटकी बननेरूप क्रियामें कुभकार सहायक निमित्त है। इस सहायक निमित्तको ही उपचारसे कर्त्ता कहते हैं। इस प्रकार कर्त्ताके दो भेद हैं। एक वास्तविक कर्त्ता और दूसरा उपचरित कर्त्ता। क्रियाका उपादान कारण ही वास्तविक कर्त्ता है। इसलिये कोई भी क्रिया वास्तविक कर्त्ताके विना नहीं हो सकती। परतु उपचरित कर्त्ताका नियम नहीं है। घटरूप कार्यके बननेमें उपचरित कर्त्ताकी जरूरत है परतु नदीके बहनेरूप कार्यमें उपचरित कर्त्ताकी जरूरत नहीं है। इस सृष्टिकर्त्तत्ववादमें कर्त्ता शब्दसे चेतन निमित्त कारण अभिप्रेत है और कार्यत्व हेतुसे उसे अविनाभावी मानकर सूर्यादिकमें कर्तृजन्यत्व सिद्ध करते हैं। परतु वास्तवमें कार्य सामा-

न्यकी व्याप्ति कारण सामान्यके साथ है, कारण विशेषके साथ नहीं है। कार्यत्व हेतुसे निमित्त कारण सिद्ध हो सकता है परंतु निमित्त कारण चेतन भी होते हैं और अचेतन भी होते है। यह नियम नहीं है कि समस्त कार्य चेतन निमित्तसे ही होते हों। एक दृष्टान्तमे किसी दो पदार्थोंका सद्भाव रहनेसे सर्वत्र उनकी व्याप्ति सिद्ध नहीं हो सकती किन्तु विपक्षमें वाधक केवलसे ही व्याप्तिका निश्चय होता है। किसी मनुष्यके मित्रके चार पुत्र थे और वे चारों ही श्यामवर्ण थे। कुछ कालमें मित्रकी भार्या गर्भवती हुई तो महाशयजीने इस प्रकार अनुमान किया कि— मित्रकी भार्याके गर्भस्थित पुत्र श्याम होगा। क्योंकि वह मित्रका पुत्र है। जो २ मित्रके पुत्र हैं वे २ श्याम हैं। और जो २ श्याम नहीं हैं वे २ मित्रके पुत्र भी नहीं हैं। गर्भस्थ मित्रका पुत्र है इसलिये श्याम होगा। परंतु यदि मित्रका पुत्र गोरा हो जाय तो वाधक कौन। इसलिये विपक्षमें वाधकके अभावसे मित्रपुत्रत्व और श्यामत्वमें व्याप्ति नहीं हो सकती इस ही प्रकार कार्य और चेतन कर्तामें भी विपक्षमें बाधकके अभावसे व्याप्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार कार्यत्वहेतु ईश्वरकी सत्ता सिद्धकरनेमें असमर्थ है। संसारमें छह द्रव्य हैं। उनमेंसे जीव और पुद्गल इन दो द्रव्योंका शुद्ध तथा अशुद्ध दो प्रकारका परिणमन होता है। किन्तु शेष चार द्रव्योंका शुद्ध ही परिणमन होता है। अन्य द्रव्यसे अलिप्त किसी द्रव्यके आपमें आपरूप परिणमनको शुद्ध परिणमन कहते हैं। परन्तु एक द्रव्य किसी दूसरे द्रव्यसे मिलकर एकीभावको प्राप्त होकर

बन्धपर्यायरूप परिणमें तो उस परिणमनको अशुद्ध परिणमन कहते हैं। जैसे हलदी चूना परस्पर मिलकर श्वेत और पीतभावको त्यागकर रक्तभावरूप एकत्त्वको प्राप्त होकर अशुद्ध परिणमनरूप परिणमे है। कमलपत्र और जलकी तरह केवल संयोगमात्रको बन्ध अथवा अशुद्ध परिणमन नहीं कहते हैं। जीव और पुद्गलमें एक गुण ऐसा है जिसको कि वैभाविकी शक्ति कहते हैं। उसके सबबसे इन दोनोंका अशुद्ध परिणमन होता है। किन्तु शेष चार द्रव्येंमें यह गुण नहीं है इसलिये उन चार द्रव्योंका अशुद्ध परिणमन नहीं होता है। इस ही अशुद्ध परिणमनको बन्ध कहते हैं। बन्ध दो प्रकारका है। एक सजातीय बन्ध और दूसरा विजातीय बन्ध। पुद्गलके साथ पुद्गलके बन्धको सजातीय बन्ध कहते हैं। और जीवके साथ पुद्गलके बन्धनको विजातीय बन्धन कहते हैं। एक जीवका दूसरे जीवसे बन्ध नहीं होता है। इसलिये जीवमें केवल विजातीय बन्ध होता है। किन्तु पुद्गलमें सजातीय और विजातीय इस प्रकार दोनों प्रकारके बन्ध होते हैं। अनेक कारणोंके एकत्र होनेपर कार्यकी सिद्धि होती है। इस कारण जीव और पुद्गलमें भी केवल वैभाविक शक्तिसे ही बन्ध नहीं हो जाता किन्तु बन्ध होनेके वास्ते दूसरे सहकारी कारणोंकी अवश्यकता रहती है। पुद्गल द्रव्यमें एक स्पर्श गुण है। उस स्पर्श गुणकी स्निग्ध और रुक्ष ये दो पर्याय होती रहती हैं। यह स्निग्ध और रुक्ष परिणमन तारतम्य अर्थात् तीव्र और मन्दरूप होता है। इस तीव्रता और मन्दताके परिमाण परिज्ञानार्थ गुणमें अविभागी शक्त्यशोंकी कल्पना की जाती है।

इन अविभागी शक्त्यंशोंको अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं। स्निग्ध गुण परमाणुका स्निग्ध गुण परमाणुसे, तथा स्निग्ध गुण परमाणुका रुक्ष गुण परमाणुसे और रुक्ष गुण परमाणुका रुक्ष गुण परमाणुसे बन्ध होता है। जिन परमाणुओंमें स्निग्ध अथवा रुक्षका केवल एक अविभाग प्रतिच्छेद होता है वह अन्य परमाणुके साथ बन्धको प्राप्त नहीं होता। किन्तु जिन परमाणुओंमें दो तीन आदिक अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं वे यथायोग्य अन्य परमाणुओंके साथ बन्धको प्राप्त होते हैं। परन्तु इनमें भी अनियमसे बन्ध नहीं होता है किन्तु जिन परमाणुओंके अविभाग प्रतिच्छेदका अंतर दो होता है उन ही परमाणुओंका अनुकूल क्षेत्रमें अवस्थान होनेसे बन्ध होता है। जैसे दो अविभाग प्रतिच्छेदवालेका चार अविभाग प्रतिच्छेदवालेसे, तीन अविभाग प्रतिच्छेदवालेको पांच अविभाग प्रतिच्छेद वालेसे इत्यादि। बन्धमें अधिक अविभाग प्रतिच्छेदवाला ही अविभाग प्रतिच्छेदवालेको अपने रूप परिणमा लेता है। जिस प्रकार परमाणुका परमाणुसे बन्ध होता है उस ही प्रकार परमाणुका स्कन्धसे तथा स्कन्धका स्कन्धसे यथायोग्य अनुकूलता होनेपर बन्ध होता है। एक स्कन्धके यथायोग्य कारण मिलनेपर दो अथवा अनेक खंड भी हो जाया करते हैं। और ये खंड स्कन्ध तथा परमाणु दोनों स्वरूप होते रहते हैं। भावार्थ अनेक परमाणु तथा एक परमाणु और एक स्कन्ध तथा अनेक स्कन्ध परस्पर बन्धको प्राप्त होकर एक स्कन्धरूप हो जाते हैं। इस ही प्रकार एक स्कन्ध बिखरकर कभी अनेक स्कन्धरूप कभी स्कन्ध और परमाणुरूप

और कभी अनेक परमाणुरूप होजाता है। इस प्रकार इस ससारमें कभी परमाणु स्कन्धरूप हो जाते हैं और कभी स्कन्ध परमाणुरूप हो जाते हैं। परन्तु ऐसा नियम नहीं है कि ससारके सब ही स्कन्ध परमाणुरूप तथा सब ही परमाणु स्कन्धरूप होते ही रहैं किन्तु अनेक परमाणु ऐसे हैं जो हमेशासे परामणु हैं और हमेशातक परमाणुरूप ही रहेंगे। और इस ही प्रकार सूर्यचन्द्र, सुमेरुपर्वत पृथ्वी आदिक अनेक स्कन्ध ऐसे हैं जो हमेशासे स्कन्धरूप हैं तथा हमेशातक स्कन्धरूप ही रहेंगे। और इन नित्य स्कन्धोंमें भी अनेक परमाणु ऐसे हैं जो उन स्कन्धोंसे न तो आजतक निकले हैं और न कभी निकलेंगे। और अनेक परमाणु ऐसे हैं जो इन स्कन्धोंमें आते रहते हैं तथा अनेक उनमेंसे निकलते रहते हैं इस प्रकार पुद्गलका पुद्गलके साथ बन्ध होनेमें सहकारी कारण स्पर्शगुणकी स्निग्ध और रुक्ष पर्याय हैं। यह स्निग्ध रुक्ष पर्याय स्कन्धमें भी होती है और शुद्ध परमाणुमें भी होती है इसलिये पुद्गलका पुद्गलके साथ बन्ध अशुद्ध अवस्थारूप स्कन्धोंमें भी होता है तथा शुद्ध अवस्थाको प्राप्त परमाणुओंमें भी होता है। परन्तु जीव और पुद्गलके विजातीय बन्धमें ऐसा नहीं होता है। अब आगे जीव और पुद्गलके विजातीय बन्धका स्वरूप कहते हैं।

एक द्रव्य जब दूसरे द्रव्यके साथ बन्धको प्राप्त होता है उस समय उसका अशुद्ध परिणमन होता है। उस अशुद्ध परिणमनमें दोनो द्रव्योंके गुण अपने स्वरूपसे च्युत होकर विकृत भावको प्राप्त होते हैं। जीव द्रव्यके गुण भी अशुद्ध अवस्थामें

इस ही प्रकार विकारको प्राप्त होते रहते हैं। जीव द्रव्यके अशुद्ध परिणमनका मुख्य कारण तो वैभाविकी शक्ति है और सहायका निमित्त जीवके गुणोंका विकृत परिणमन है। इसलिये जीवका पुद्गलके साथ अशुद्ध अवस्थामें ही बन्ध होता है। शुद्ध अवस्थ होनेपर विकृत परिणमन नहीं होता। विकृत परिणमन ही बन्धका सहायक निमित्त है और शुद्ध अवस्थामें उसका अभाव है इसलिये एक बार शुद्ध होनेपर कारणके अभावसे पुनः कदापि बन्ध नहीं होता। परन्तु पुद्गल द्रव्य शुद्ध होनेपर भी बन्धके कारण स्निग्ध रुक्ष आदिकके सद्भावसे बन्धको प्राप्त हो जाता है। संसारमें अनेक जीव देखे जाते हैं वे सब अशुद्ध हैं। यदि उनको शुद्ध माना जाय तो क्रोधादिक परिणाम जीवके स्वाभाविक गुण ठहरेंगे। स्वाभाविक गुण नित्य होते हैं। परन्तु क्रोधादिक अनित्य हैं। इसलिये क्रोधादिक गुणोंके अभावमें जीव गुणोंके भी अभावका प्रसग आवेगा। इसलिये जीव बन्धसहित है। अथवा अनुमान अभावसे भी जीव बन्ध सहित अशुद्ध ही सिद्ध होता है। वह अनुमान इस प्रकार है कि संसारी जीव बंधवान है क्योंकि यह परतन्त्र है। जो २ परतन्त्र होते हैं वे २ बधवान हैं। जैसे स्तभ और जजीरसे बधा हुआ हस्ती। यह हेतु असिद्ध नहीं है। क्योंकि उसकी सत्ताका साधक यह अनुमान है। यह ससारी परतन्त्र है क्योंकि इसने हीनस्थानका ग्रहण कर रक्खा है। जो २ हीनस्थानका ग्रहण करता है वह २ परतन्त्र होता है, जैसे कैदी। यह हेतु भी असिद्ध नहीं है, क्योंकि इसने शरीरको ग्रहण कर रक्खा है। शरीरका

ग्रहण करना प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध है। और शरीरके हीन-स्थानपना इस अनुमान प्रमाणसे सिद्ध है शरीर हीनस्थान है क्योंकि दुःखका कारण है। जो २ दुःखका कारण होता है सो २ हीनस्थान होता है जैसे जेलखाना। यह हेतु देव शरीरमें व्याभिचारी नहीं है क्योंकि मरणका दुःख वहापर भी मौजूद है। इस प्रकार अनुमान प्रमाणसे यह ससारी जीव बन्धसहित अशुद्ध सिद्ध होता है। अब यहां यह शङ्का उठ सकती है कि ससारी जीव अनादिकालसे अशुद्ध है या पहले शुद्ध था और पीछेसे अशुद्ध हो गया। उत्तरमें निवेदन है कि यह जीव सन्तान-क्रमसे बीजवृक्षवत् अनादिकालसे अशुद्ध है। यदि पहिले शुद्ध होता तो विनाकारण बीचमें अशुद्ध कैसे होजाता और यदि विनाकारण ही बीचमें अशुद्ध हो गया है तो उससे पहले अशुद्ध क्यों नहीं हो गया। तथा मुक्त जीवके भी पुनः बन्धका प्रसग आवेगा। तथा विनाकारणके कार्य होनेसे कार्यकारणभावके भंगका भी प्रसग आवेगा। यदि कहो कि अनादिकालीन अ-शुद्धता अनतकाल पर्यन्त रहनी चाहिये सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि धानका बीजवृक्ष सम्बन्ध अनादिकालसे चला आ रहा है। परन्तु जब धानपरसे छिलका उतार लिया जाता है तो चांवल अनेक प्रयत्न करनेपर भी नहीं ऊगता है। उस ही प्रकार जीव-के भी अनादि सतानक्रमसे विकृत भावोंसे कर्मबन्ध और कर्मके उदयसे विकृतभाव होते चले आये हैं। परन्तु जब छिलका-रूपी विकृतभाव जुदे हो जाते हैं तो फिर चांवलरूपी शुद्ध जी-वके अकुरोत्पत्तिरूपी कर्मबध नहीं होता। जिस प्रकार चुम्बक

पाषाणमें लोहेको आकर्षण करनेकी शक्ति है। और लोहेमें आकर्षण होनेकी शक्ति है। अन्य पदार्थोंमें ऐसी शक्तिके अभावसे न तो इतर पदार्थ लोहेको खींचता है और न चुम्बक पत्थरसे लोहेके सिवाय दूसरा पदार्थ खींचता है। उस ही प्रकार पुद्गलके वाईस प्रकारके स्कन्धोंमेंसे केवल पांच स्कन्ध अर्थात् १ आहारवर्गणा, २ तैजसवर्गणा ३ भाषावर्गणा ४मनोवर्गणा और ५ कार्माणवर्गणा रूप पाच स्कन्ध जीवकी आकर्षण शक्तिसे खिंचते है और जीव अपनी आकर्षणशक्तिसे इनको आकर्षण करता है। जीव और इन पच स्कन्धोंके शिवाय इतर द्रव्य तथा स्कन्धोंमें आकर्षक आकर्ष्य शक्तिके अभावसे आकर्ष्य आकर्षक भाव भी नहीं है। जीवकी इस आकर्षक शक्ति अर्थात् एक गुणके विकृत परिणामको योग कहते हैं। इस योग शक्तिके निमित्तसे अनुकूल क्षेत्रमें अवस्थित पंच स्कन्ध आकर्षित होकर आकर्षण करनेवाले जीवके साथ बन्ध पर्यायको प्राप्त होकर एक क्षेत्रावगाहरूप अवस्थित होते हैं। जीव और पुद्गलके इस एक क्षेत्रावगाहरूप अवस्थानको उभय बन्ध कहते हैं। और इस एक क्षेत्रावस्थानकेलिये पच स्कन्धोंके आगमनको द्रव्याश्रव कहते हैं। उभय बन्धको कारणभूत जीवकी योगशक्तिको भावबन्ध कहते हैं। तथा द्रव्याश्रवको कारणभूत जीवकी योगशक्तिको भावाश्रव कहते हैं और पंचस्कन्धोंकी आकर्ष्य शक्तिको द्रव्यबन्ध कहते हैं। पंच स्कन्धोमेंसे पहले कार्माणवर्गणाके स्कन्धके बन्धका स्वरूप लिखते हैं। कार्माण स्कन्धका बन्ध चार प्रकार है। १ प्रकृतिबन्ध, २ प्रदेशबन्ध ३ स्थिति

बन्ध और ४ अनुभागबन्ध। कार्माणस्कन्ध अनेक भेदस्वरूप है और उन स्कन्धोंमें जीवके गुणोको घातनेका स्वभाव अर्थात् प्रकृति है। प्रकृति और प्रकृतिवान्मे कथचित् अभेद है इसलिये प्रकृति शब्दसे जीवके गुणोंको घातनेके स्वभाववाले कार्माण स्कन्धोका ग्रहण है। भावार्थ जीवके अनेक अशुभाशुभ परिणाम विशिष्ट योगसे जीवके गुणोंको घातनेके स्वभाववाले कार्माणा स्कन्धोंके बन्धको प्रकृति बन्ध कहते है। बध्यमान कार्माण स्कन्धमें परमाणुओंकी सख्या विशेपको प्रदेशबन्ध कहते है। ये कार्माण स्कन्ध ही जब जीवके साथ बन्धको प्राप्त हो जाते है तब कर्म कहलाते हैं। ये कर्म बन्ध होनेके समयसे जितने काल पीछे फल देंगे उतने कालको स्थितिबन्ध कहते हैं। कर्ममें काल देनेकी शक्ति विशेपको अनुभागबन्ध कहते है। अब आगे यह कथन किया जाता है कि कौन २ सा कर्म फल कालमें आत्माके किस २ गुणमें क्या २ विकार करता है।

जीवके अनेक गुणोंमेंसे कुछ थोड़ेसे गुण ऐसे हैं जिनका कर्मोंसे सम्बन्ध है और उनमें भी केवल पाच गुण प्रधान है। उन पाच गुणोंके नाम इस प्रकार है—१ चेतना, २ वीर्य, ३ सुख, ४ सम्यक्त्व, और ५ चारित्र, आत्माकी जिस शक्तिसे पदार्थोंका प्रतिभास होता हे उसको चेतना कहते हैं। विपयके भेदसे चेतनाके दो भेद हें अर्थात् जिस समय चेतनामें पदार्थ सामान्यका प्रतिभास होता है उस समय उस चेतनाको दर्शन कहते हैं और जिस समय उस चेतनामें पदार्थ विशेपका प्रतिभास होता है, उस समय उस चेतनाको ज्ञान कहते हैं। बलको

वीर्य गुण कहते हैं। सत्य पदार्थोंके विश्वासको सम्यक्त्व गुण कहते हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और धन कुटुम्बादिकमें ममत्वरूप बाह्यक्रिया तथा योग (पंचस्कंधोंको ग्रहण करनेकी शक्ति) और कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ,) रूप अभ्यन्तर क्रियाकी निवृत्तिसे प्रादुर्भूत आत्माके गुणविशेषको चारित्र कहते हैं। आकुलताकी निवृत्ति पूर्वक आल्हादात्मक आत्माके गुण विशेषको सुख कहते हैं। कर्मोंके घाति और अघाति इस प्रकार दो भेद है। जो आत्माके गुणको घातें उन कर्मोंको घातिकर्म कहते है। जो कर्म जीवके गुणोंको न घातें किन्तु जीवके शरीरादिक तथा इष्टानिष्ट पदार्थोंका सयोग वियोगादिक करें उनको अघातिकर्म कहते है। घातिकर्मोंके चार भेद हैं। १ ज्ञानावरण, २ दर्शनावरण, ३ मोहनीय और ४ अन्तराय, ज्ञानको घाते उसको ज्ञानावरण कहते हैं। दर्शनको घाते उसको दर्शनावरण कहते हैं। जो वीर्यगुणको घाते उसको अन्तराय कर्म कहते हैं। मोहनीय कर्मके दो भेद हैं। एक दर्शनमोहनीय। दूसरा चारित्रमोहनीय। सम्यक्त्व अर्थात् सम्यग्दर्शनगुणको जो कर्म घाते उसको दर्शनमोहनीय कहते हैं। जो कर्म चारित्रगुणको घाते उसको चारित्रमोहनीय कहते है। घाति कर्मोंमें घातनेकी शक्ति दो प्रकारकी है। एक सामान्यशक्ति और दूसरी विशेषशक्ति। विशेष शक्तियोंसे तो उपर्युक्त अनुसार भिन्न २ गुणोंको घातते हैं परन्तु समस्त ही घातिकर्म अपनी सामान्य शक्तिसे जीवके सुख गुणको घातते हैं। इष्ट तथा अनिष्ट इन्द्रिय विषयोंका जो अनुभवन

करावे सो साता और असाता दो भेदरूप वेदनीयकर्म है। जिस कर्मके फलसे उच्च तथा नीच कुलमें जन्म हो उसको गोत्रकर्म कहते है। नरक, पशु, मनुष्य और देवोंके शरीरमें जो जीवोंका अवस्थान करावे उसको आयुकर्म कहते है। शुभ तथा अशुभ शरीरादिक सामिग्री जिस कर्मके फलसे हो उसको नामकर्म कहते हैं। इस प्रकार वेदनीय, गोत्र, आयु और नाम ये चार भेद अघाति कर्मके हैं। जीवोंके शरीर दो प्रकारके हैं स्थूल और सूक्ष्म। सूक्ष्म शरीर भी दो प्रकारके हैं। तैजस और कार्माण। स्थूल शरीरको कान्ति देनेवाले शरीरको तैजस शरीर कहते हैं। अष्ट कर्मोंके समूहको कार्माण शरीर कहते हैं। आहारवर्गणासे स्थूल शरीर तैजस वर्गणासे तैजस शरीर और कार्माण वर्गणासे कार्माण शरीर बनता है। मनोवर्गणासे मन और भाषावर्गणासे वचन बनते हैं। मन वचन और समस्त शरीर नाम कर्मके फलसे प्राप्त होते हैं। जिन कर्मोंके फलसे इष्ट पदार्थकी प्राप्ति होती है उनको पुण्यकर्म और जिससे अनिष्ट पदार्थोंकी प्राप्ति होती है उनको पापकर्म कहते हैं। प्रकृतिबंध और प्रदेशबंधका कारण योग है। तथा स्थितिबंध और अनुभागबंधका कारण कषाय है। इन ही चारों प्रकारके बंधको कारणभूत जीवके योग कषायरूप परिणामोंको भावबन्ध कहते है। इस प्रकार बंधका कथन समाप्त हुआ।

नवीन कर्मोंके आगमनको द्रव्यास्रव कहते हैं। द्रव्यास्रवके दो भेद हैं। एक ईर्यापथ आस्रव और दूसरा सांपरायिक आस्रव। जो कर्मबन्धके समयमेंही अपना फल देकर आत्मासे जुदे

हो जांय उनको ईर्यापथ आस्रव कहते है और जो बन्ध होकर कुछ कालतक जीवके साथ बधे रहें उनको साम्परायिक आस्रव कहते है। कषाय विशिष्ट योगसे साम्परायिक आस्रव होता है। किन्तु कषाय रहित केवल शुद्ध योगसे ईर्यापथ आस्रव होता है। कषायके दो भेद हैं, मन्द और तीव्र। मन्द कषायको शुभ परिणाम कहते है और तीव्र कपायको अशुभ परिणाम कहते है। शुभ परिणाम विशिष्ट योगको शुभयोग और अशुभ परिणाम विशिष्ट योगको अशुभ योग कहते है। असत्य पदार्थोंके विश्वासको मिथ्यात्व कहते है। यह मिथ्यात्वरूप परिणाम भी अशुभ परिणाममें अन्तर्भूत है। शुभ योगसे पुण्य कर्मका आस्रव होता है और अशुभ योगसे पापकर्मका आस्रव होता है। इन ही शुभ अशुभ और शुद्ध योगोंको भावास्रव कहते हैं। योग और कषायोंमें कर्मोंके आस्रव तथा बध इस प्रकार दो कार्योंको कारणभूत दो शक्ति है। इसलिये इन ही योग और कषायोंको भावास्रव भी कहा है और भावबन्ध भी कहा है। इस प्रकार अनादि सन्तानक्रमसे पूर्वबद्ध कर्मोंके फलसे विकृत परिणामोंको प्राप्त होकर जीव अपने ही अपराधसे आप नवीन कर्मोंका बंध करता है। तथा इन ही नवीन बद्धकर्मोंके उदयसे पुनः इसके विकृत परिणाम होते है और उनसे पुनः पुनः नवीन नवीन कर्मोंका बन्ध करता हुआ अनादि निधन असार संसारमें पर्यटनकर नरक तिर्यञ्च मनुष्य और देव इन चतुर्गतिके घोर दुःखोंको भोग रहा है। इस जगतको न तो किसी सृष्टिकर्ता ईश्वरने रचा है और न कोई इसकी प्रलय करता है न जीवोंको किसीने बनाया है

और न कोई इससे कर्म कराता है तथा न कोई इस जीवको कर्मोंका फल देनेवाला है। जगतमें न कोई नवीन पदार्थ उत्पन्न होता है और न किसी पदार्थका विनाश होता है। इसलिये समस्त पदार्थ नित्य हैं। परतु समस्त ही पदार्थ प्रतिक्षण एक २ अवस्थाको त्याग दूसरी २ अवस्थाको प्राप्त होते रहते हैं। इसलिये समस्त ही पदार्थ अनित्य है। इन समस्त पदार्थोंके समूहको ही जगत कहते है। समस्त पदार्थ कथञ्चित् नित्यानित्यात्मक हैं इसलिये यह जगत भी कथञ्चित् नित्यानित्यात्मक है। दर्शनमोहनीय कर्मके निमित्तसे भ्रमवश इस जीवने अनेक भ्रमात्मक पदार्थोंका असत्य विश्वास करके किसी पदार्थको इष्ट और किसी पदार्थको अनिष्ट मान रक्खा है। तथा चारित्रमोहनीय कर्मके वशसे इष्टानिष्ट पदार्थोंमें रागद्वेष करके अनेक कर्मोंके वन्धनसे बद्ध अपनी ज्ञान, दर्शन वीर्य, सुख, सम्यक्त्व और चारित्र रूप अविनाशी विभूतिको भूला हुआ अनादि कालसे घोर दुःख सहन कर रहा है। इस प्रकार दुःखके कारणका प्रतिपादन कर अब आगे इन दुःखोंसे मुक्त होनेके उपायका वर्णन किया जाता है।

जिस प्रकार खानिमेंसे सुवर्ण अनेक पदार्थोंसे मिश्रित अशुद्ध निकलता है और यदि कोई महाशय उस अशुद्ध सुवर्णको शुद्ध करनेका उपाय करे तो वह सुवर्ण शुद्ध हो जाता है। उस ही प्रकार इस जीव द्रव्यको भी यदि कोई शुद्ध करनेका उपाय करे तो यह जीव भी शुद्ध हो सकता है। जिस कारणसे जिस कार्यकी उत्पत्ति होती है उसकारणके अभावमें उस कार्यकी उत्प-

त्तिका भी अभाव हो जाता है। इस लिये जिनकारणोंसे नवीन नवीन कर्मोंका आस्रव होता है उन कारणोंके प्रतिपक्षी पदार्थोंकी उपासना करनेसे आस्रवके कारणोंका अभाव हो जावेगा और कारणके अभावसे नवीन आस्रवका भी अभाव हो जावेगा। इस नवीन आस्रवके रुकनेको द्रव्य संवर और जीवके जिन भावोंसे यह द्रव्य सवर हो आत्माके उन भावोंको भावसवर कहते हैं। वन्धको कारणभूत जीवके परिणामोंसे विपक्षी परिणामोंकी आराधना करनेसें वंधे हुए कर्म आत्मासे जुदे हो जाते हैं। वंधे हुए कर्मोंके इस प्रकार आत्मासे जुदे होनेको द्रव्यनिर्जरा कहते हैं और जिन भावोंसे यह द्रव्य निर्जरा हो जीवके उन भावोंको भावनिर्जरा कहते हैं। जब नवीन कर्मोंका तो आस्रव नहीं होगा और पूर्ववद्ध कर्मोंकी निर्जरा हो जायगी तो आत्मासे सवकर्म जुदे होनेके सववसे आत्मा शुद्ध हो जायगा और आत्माकी इस शुद्ध अवस्थाको ही मोक्ष कहते हैं। मोक्षमें आत्मासे सव कर्म जुदे हो गये इसलिये कर्मजनित विकार भी आत्मासे दूर हो गये। ये विकार ही नवीन वन्धके कारण हैं इसलिये मोक्ष होनेके वाद ये पुनः कर्म मलसे लिप्त नहीं होते। ज्ञानावरण कर्मके अभावसे अनन्तज्ञान, दर्शनावरण कर्मके अभावसे अनन्त दर्शन, अन्तरायके अभावसे अनन्तवीर्य, दर्शनमोहनीयके अभावसे शुद्ध सम्यक्त्व और चारित्रमोहनीयके अभावसे शुद्ध चारित्र और समस्त घाति कर्मोंके अभावसे अनन्त सुख इस प्रकारसें घातिकर्मोंके अभावसे आत्माके छहों गुणोंका निर्विकार प्रादुर्भाव हो जाता है। तथा वेदनीय कर्मके निमित्तसे संसारमें आकुलता होती थी परन्तु अब

वेदनीय कर्मके अभावसे निराकुल अर्थात् अव्याबाध हो जाता है। गोत्रकर्मके निमित्तसे उच्च नीच कुलमें जन्म लेकर उच्च नीच कहलाता था। परन्तु अब गोत्रकर्मके अभावसे अनुच्चनीच अर्थात् अगुरु लघु हो जाता है। नामकर्मके निमित्तसे शरीरादिकसे बद्ध होनेके कारण यह जीव मूर्त अवस्थाको प्राप्त होरहा था किन्तु अब नाम कर्मके अभावसे अमूर्त अर्थात् सूक्ष्म होजाता है। आयुकर्मके निमित्तसे ससारमें रुक रहा था किन्तु अब आयुकर्मके अभावसे स्वतन्त्र अवगाहरूप होकर अपने उर्द्धगमन स्वभावसे जिस स्थानपर कर्मोंसे मुक्त होता है उस स्थानसे सीधा पवनके झकोरोंसे रहित अग्निकी तरह ऊर्द्ध गमन करता है। जहां तक गमन सहकारी धर्म द्रव्यका सद्भाव है वहां तक गमन करता है। आगे धर्म द्रव्यका अभाव होनेसे अलोकाकाशमें गमन नहीं होता इसकारण समस्त मुक्त जीव लोकके शिखरपर विराजमान रहते है। यद्यपि यथार्थमें आत्मा लोकाकाश प्रमाण है परन्तु सकोच विस्तार शक्ति युक्त होनेसे कर्मके निमित्तसे छोटा बडा जैसा शरीर पाता था उतना ही बडा छोटा दीप प्रकाशकी तरह जीवका आकार होता था। यह सकोच विस्तार कर्मके निमित्तसे होता था परन्तु अब कर्मका अभाव होगया है इसलिये सकोच विस्तार भी नहीं होता किन्तु जिस शरीरसे मुक्तिको प्राप्त होता है उस ही शरीर प्रमाण (किंचिदून) जीवका आकार होता है। यदि यहां कोई यह शका करे कि जब जीव मोक्षसे लौटकर तो आते नहीं तथा नवीन जीव उत्पन्न होते नहीं और मोक्ष जानेका सिलसिला हमेशा

जारी रहता है तो एक दिन संसारके सब जीव मोक्षको चले जां-
यगे और ससार खाली हो जायगा। उत्तरमें निवेदन है कि
जीवराशि अक्षय अनन्त है इसलिये इसका कभी अत नहीं
आवेगा। जिस प्रकार आकाशद्रव्य सर्वव्यापी अनन्त है तो
किसी एक दिशामें विना मुडे निरन्तर यदि कोई गमन करता
चला जाय तो कभी भी उसका अत नहीं आता है अन्यथा
सर्व व्यापित्वके अभावका प्रसग आवेगा। अथवा जैसे कोई
मुरगीकी उत्पत्ति अडेके विना नहीं होती और अडेकी उत्पत्ति
मुरगीके बिना नहीं होती है। उपर्युक्त मुरगीकी भूतकालकी
सतानमें यदि मुरगी और अडोंकी गणना की जाय तो इस
मुरगीकी सतान परपरामें नवीन वृद्धि तो होती नहीं है क्योंकि
मुरगी विना अडा दिये मरगई। जितनी २ भूत सतातिरूप
मुरगी अडोंकी गणना करते जाते है उतनी २ कमी हो जाती है।
अब यहां पूछा जाता है कि इस प्रकार गणना करते २ कभी मुरगी
अडोंकी संतान सख्याका अत आ जायगा या नहीं? यदि आजा-
गा तो अंतिम मुरगी या अडा विना अडे या मुरगीके उत्पन्न
हुआ मानना पड़ेगा और ऐसा माननेसे कार्य कारण भावके
भगका प्रसंग आवेगा। और यदि कहोगे कि कभी भी अत
नहीं आवेगा तो जीवोंका भी मोक्ष जाते २ कभी भी अत नहीं
आवेगा। यदि कोई महाशय यह शंका करें कि मोक्षमें जितने
जीव पहुचे हैं वे सब ससारसे गये हैं इस लिये पहले किसी दिन
मोक्षस्थान शून्य होगा। उत्तरमे निवेदन है कि यदि मोक्षका
जानां किसी खास कालसे प्रारम्भ होता तो अवश्य किसी

समय मोक्षस्थान शून्य होनेका प्रसग आता परन्तु मोक्षका होना, अनादिकालसे जारी है इसलिये मोक्षस्थानमें शून्यताका प्रसग नहीं आता है। जिस प्रकार प्रत्येक चावलकी उत्पत्ति धानका छिलका उतरनेसे होती है परन्तु संसारमें ऐसा कोई समय नहीं था कि जब ससारमें चांवल नहीं थे क्योंकि चांवलोंकी उत्पत्ति अनादि कालसे जारी है। इस ही प्रकार मुक्ति होनेका सिल-सिला भी अनादि कालसे जारी होनेके सबबसे मोक्षस्थान कभी भी शून्य नहीं था। इस प्रकार मोक्षतत्वका स्वरूप निर्विवाद सिद्ध हुआ। ऐसी अविनाशी अनन्तसुखरूप मुक्ति आत्माके जिन भावोंकी उपासना करनेसे प्राप्त हो आत्माके उन्हीं भावोंको **सार्वधर्म** कहते हैं। ये भाव न तो किसी तीर्थमें हैं और न किसी मन्दिर या प्रतिमामें है किन्तु ये भाव आपकी आत्मामें ही हैं उनको ढूढनेके लिये अन्यत्र जानेकी आवश्यकता नहीं है। यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं तो आप बिना किसी पराधीनताके स्वतः ही अपने ही भावस्वरूप सार्वधर्मकी उपासना करनेसे आप अपना कल्याण कर सकते हैं। अब आगे इस ही सार्वधर्मका कुछ वि-शेष स्वरूप लिखा जाता है।

अपनी स्थिति पूरी करके कर्मोंकेफल देनेको उदय कहते हैं। जिस समय कर्म सत्तामें तो होंय लेकिन फल न देते होंय उसको उपशम कहते हैं। कर्मकी आत्यन्तिक निवृत्तिको क्षय कहते है। घातिकर्मके दो भेद हैं। सर्वघाति और देशघाति। जो प्रतिपक्षी गुणको पूर्णरूपसे घाते उसको सर्वघाति कहते है। और जो प्रतिपक्षी गुणके एकदेशको घातै उसको देशघाति कहते है।

एक समयमें उदय आने योग्य कर्मपरमाणुओंके समूहको निषेक कहते हैं। वर्तमान निषेकमें सर्वघाति स्कन्धोंका उदय, क्षय (विना फलदिये निर्जरा) और देशघाति स्कन्धोंका उदय तथा वर्तमान निषेकको छोड़कर ऊपरके (आगामी समयोंमें उदय आने योग्य) निषेकों का सदवस्थारूप उपशम कर्मकी ऐसी अवस्थाको क्षयोपशम कहते हैं। समस्त कर्मोंका राजा मोहनीय कर्म है। इस ही कर्मके उदयसे यह जीव ससारमें भ्रमण कर रहा है और इस ही कर्मके नाश करनेसे यह जीव मोक्षको प्राप्त होता है। मोहनीय कर्मके दो भेद है। एक दर्शनमोहनीय और दूसरा चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीयको मिथ्यात्व भी कहते है। इस मिथ्यात्वकर्मके उदयसे जीवका सम्यग्दर्शन गुण विकार भावको प्राप्त होता है सम्यग्दर्शन गुणकी इस विकृत अवस्थाको मिथ्या-दर्शन कहते हैं। जब तक मिथ्यात्व कर्मका उदय रहता है तब तक यह जीव अपने शुद्धस्वरूपका अनुभव नहीं कर सकता और मोक्ष मार्गसे बिल्कुल दूर तथा विषयभोगोंकी अंतरग तृष्णा इसका पिंड नहीं छोड़ती। जैसे दाहज्वर पीडित मनुष्य वैद्यके उप-देशसे जलपानको दुखदाई जान नहीं पीता है। परन्तु जलकी तृष्णाने अभीतक उसका पिंड नहीं छोड़ा है। इस ही प्रकार मि-थ्यात्वकर्मके उदयसे मिथ्यादृष्टि जीव सद्गुरुके उपदेशसे विषय भोगोंको नरक पशुगतिके घोर दुःखोंका कारण जान उनके आसेवनका त्याग कर देता है। परन्तु अंतरंगमें विषयभोगकी तृष्णासे अलिप्त नहीं है। परन्तु जिन जीवोंके सम्यग्दर्शनका प्रादुर्भाव हो जाता है ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव जलकी तृष्णार-

हित निरोगी पुरुषकी तरह विषयभोगोंकी तृष्णासे बिल्कुल अलिप्त रहता है। सम्यक्त्वके बिना चाहे जितना तपश्चरण करे। तो भी ससारसे मुक्त नहीं होता। सम्यक्त्वके बिना ज्ञान मिथ्याज्ञान है और चारित्र मिथ्याचारित्र है। जिन जीवोंके एक बार भी सम्यक्त्वका प्रादुर्भाव हो जाता है वे नियमसे थोडे ही कालमें अवश्य मोक्षको जाते हैं। इस गुणका स्वरूप सूक्ष्म है इसका स्वरूप अस्मदादि नहीं जान सकते। जैसे जन्मान्ध पुरुषके ज्ञानका साधन न होनेके सबबसे रूपको नहीं जान सकता इस ही प्रकार अस्मदादि भी सम्यक्त्वको नहीं जान सकते। यह सम्यक्त्व गुण प्रत्यक्ष ज्ञानी ऋषियोंके ज्ञानके गोचर है स्थूल ज्ञान और शब्दोंके गोचर नहीं है। जैसे जन्मान्धोंको हरे और पीले आमका ज्ञान उस हरे और पीले गुणसे अविनाभावी गधकेद्वारा कराया जाता है उस ही प्रकार हम स्थूल ज्ञानियोंके समझानेके लिये श्रीगुरुदेवने सम्यक्त्वसे अविनाभावी शुद्धात्मानुभूतिको ही उपचारसे सम्यक्त्व बताया है। तथा उपचारसे ही शुद्धात्मानुभूति करके सहित तत्वार्थश्रद्धान तथा रुचि और प्रतीतिको भी सम्यक्त्व कहा है। चारित्रमोहनीय कर्म उसको कहते हैं जो आत्माके चारित्र गुणको घाते। चारित्रगुणके दो भेद हैं। एक स्वरूपाचरणचरित्र और दूसरा सयमाचरणचरित्र। पर पदार्थमें इष्टानिष्टत्व निवृत्ति पूर्वक निजस्वरूपमें प्रवृत्तिको स्वरूपाचरणचारित्र कहते हैं। हिंसादि पापोंसे तथा क्रोधादिक कषायोंसे निवृत्तिपूर्वक आत्माके विशद तथा उदासीन भावको सयमाचरणचारित्र कहते हैं। सयमाचरणचारित्रके तीन भेद हैं अर्थात्, देशचारित्र १, सकलचारित्र २, और यथाख्यातचारित्र ३ हिंसादिक

पापोंके एक देशत्यागको देशचारित्र कहते हैं। हिंसादिक पापोंके पूर्णरूपसे त्यागको सकलचारित्र कहते है। और सूक्ष्म कषायोंके भी अभावको यथाख्यात चरित्र कहते हैं। सम्यग्दर्शन सहित ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहते हैं तथा सम्यग्ज्ञानपूर्वक चारित्रको सम्यक्-चारित्र कहते हैं। चारित्रमोहनीय कर्मके दो भेद हैं एक कषाय और दूसरा नोकषाय। कपायके चार भेद हैं। १ अनंतानुवंधी, २ अप्रत्याख्यान, ३ प्रत्याख्यान, और ४ संज्वलन। और इन चारोमेंसे प्रत्येकके क्रोध मान माया और लोभकी अपेक्षासे चार २ भेद है। इस प्रकार कपायके सोलह भेद है। नोकषायके नो भेद हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, और नपुसकवेद। अनंतानुवंधी क्रोधादिक सम्यक्त्व और स्वरूपाचरण चारित्रको घातते हैं। अप्रत्याख्यान क्रोधा-दिक देशचारित्रको घातते हैं। तथा सज्वलन और नोकषाय यथाख्यातचारित्रको घातते हैं। इस प्रकार इसी मोहनीय कर्मके निमित्तसे यह जीव इस संसारमें घोर दुःख सहन कर रहा है। मोक्षमें उन दुःखोंका नितान्त अभाव है और अविनाशी अनन्त सुख है। उस मोक्षकी प्राप्तिका उपाय धर्म है। उपर्युक्त लक्षणविशिष्ट सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यग्चारित्रकी एकता-को ही धर्म कहते हैं। तथा इन ही तीनोंको रत्नत्रय कहते हैं। इस रत्नत्रयकी पूर्णता होनेपर तत्काल मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। यह रत्नत्रय एकदम पूर्ण नहीं होता है परन्तु क्रमसे पूर्ण होता है। ज्यों २ रत्नत्रयकी मात्रा वढती जाती है त्यों २ यह जीवमोक्षके निकट पहुचता जाता है। इस रत्नत्रयके तारतम्य

(हीनाधिकता) की अपेक्षासे चौदह स्थान हैं। इन ही चौदह स्थानोंको अन्वर्थसञ्ज्ञासे चौदह गुणस्थान कहते हैं। जब तक इस जीवके सम्यक्त्वका प्रादुर्भाव नहीं होता और दर्शनमोहनीय-रूप मिथ्यात्वकर्मका उदय रहता है तब तक इस जीवके मिथ्यात्व-सञ्ज्ञक प्रथम गुणस्थान रहता है। एकेन्द्रीसे लगाकर असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रीपर्यन्त मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है। सञ्ज्ञीपचेंद्रीके समस्त गुणस्थान होते है। यह मिथ्यादृष्टि यथार्थ पदार्थका श्र-द्धान नहीं करता किन्तु कपोलकल्पित मिथ्या पदार्थोंका श्रद्धान करता है। काललब्धि आनेपर कोई जीव सद्गुरुके उपदेशको पाकर अपने विशुद्ध परिणामोंसे अनतानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व इन पांचप्रकृतियोंका उपशम कर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होता है। इन उपशम सम्यक्त्व परिणामोंसे सत्तामें स्थित मिथ्यात्वकर्मके तीन खड हो जाते हैं। कुछ परमाणु-की अनुभागशक्ति इतनी क्षीण हो जाती है कि वे सम्यक्त्वको मूलसे घात तो कर नहीं सकते किन्तु उसमें शकादिक मल उत्पन्न करते हैं। इन परमाणुओंके समूहको सम्यक्प्रकृति-कहते हैं। कुछ परमाणुओंकी शक्ति ऐसी क्षीण हो जाती है कि जिसके उदयसे जीवके परिणाम न तो सम्यक्त्व रूप ही होते हैं और न मिथ्या रूप ही होते हैं किन्तु मिश्ररूप होते हैं। और ऐसे परमाणुओंके समूहको मिश्र प्रकृति कहते हैं। उपशम सम्यक्त्वके अतर्मुहूर्त कालमें कुछ थोडासा काल शेष रहनेपर यदि अनतानुबधीकी किसी एक प्रकृतिका उदय आ जाय और मिथ्यात्व का उदय नहीं आया होवे तो अनतानुबधीके

उदयसे सम्यक्त्वका तो घात हो गया किन्तु मिथ्यात्वका उदय नहीं आया इसलिये मिथ्यादृष्टी भी नहीं हुआ। ऐसे जीवके सासादन सञ्ज्ञक दूसरा गुणस्थान होता है। जिस जीवके मिश्र प्रकृतिका उदय होता है उसके मिश्रसञ्ज्ञक तीसरा गुणस्थान होता है। जिस जीवके सम्यक्प्रकृतिका तो उदय हो और मिथ्यात्वमिश्र तथा अनंतानुबधी क्रोधादिक चार इस प्रकार छः प्रकृतियोंका उपशम हो तो उस समय उस जीवके वेदक सम्यक्त्व होता है। तथा कोई जीव सातों प्रकृतियोंका क्षय करके क्षायिक सम्यक्त्व अर्थात् उपशम वेदक क्षायिक जिसके हो वे जीव सम्यग्दृष्टि कहलाते हैं। जिन सम्यग्दृष्टियोंके चारित्र नहीं हो उनके अविरत सम्यग्दृष्टि सञ्ज्ञक चौथा गुणस्थान होता है। चौथे गुणस्थानतक चारित्र नहीं होता है इसलिये ये चारों ही गुणस्थानवाले जीव अव्रती होते हैं। चौथे गुणस्थान तथा पंचमादि समस्त गुणस्थानवर्ती जीव सम्यग्दृष्टी होते हैं। उपशम और वेदक ये दो सम्यक्त्व सातवें गुणस्थान तक ही होती है आगे केवल द्वितीयोपशम सम्यक्त्व अथवा क्षायिक सम्यक्तही होता है। जिन सम्यग्दृष्टियोंके देशचारित्र होता है उनके देशविरतसञ्ज्ञक पचमगुणस्थान होता है। देव और नारकीके आदिके चार गुणस्थान होते है। पशुओंके आदिके पांच गुणस्थान होते हैं आगेके गुणस्थान केवल साधुओंके ही होते है। पंचम गुणस्थानवर्त्ती ग्रहस्थके ग्यारह भेद हैं। जहा निर्दोष सम्यक्त्व और अष्टमूल गुणका पालन हो उसको पहिला भेद दर्शनप्रतिमा कहते हैं। मद्य त्याग १, मांसत्याग २,

मधु त्याग ३, पंचउदम्बरफल त्याग ४, रात्रिभोजन त्याग ५, जीवदयापालन ६, जल छानकरपीना ७, और अपने इष्टदेवकी-उपासना करना ८, ये आठ मूलगुण हैं। सप्तव्यसनका त्यागी भी इन ही अष्टमूल गुणोंमें गर्भित है। सप्तव्यसन इस प्रकार हैं जुआ खेलना १, मांसभक्षण २, मदिरापान ३, वेश्यासेवन ४, शिकार खेलना ५, चोरी करना ६, परस्त्रीगमन ७,। गृहस्थोंके नित्यके षट्कर्म इस प्रकार हैं। देवपूजा १, गुरूसेवा २, धर्म-शास्त्रोंका पढना पढाना ३, इन्द्रियोंके विषयोंका त्याग तथा त्रसस्थावर जीवोंकी रक्षा करना ४, उपवासादिक शक्तिअनु-सार तपश्चरण ५, और स्वपरोपकारक दान ६ बारह व्रतोंके निर्दोष पालनेको दूसरी व्रत प्रतिमा कहते हैं। बारह व्रतोंके नाम इस प्रकार हैं। सकल्पी त्रसहिंसाका त्याग १, स्थूल असत्यका त्याग २ स्थूल चोरीका त्याग ३, स्वदारसन्तोष ४, परिग्रह (धनधान्यादिक) का प्रमाण ५, देशोंदिशाओंमें गमनक्षेत्रकी मर्यादा ६, प्रतिदिवस गमनक्षेत्रकी अन्तर्मर्यादा ७, व्यर्थस्थावर हिंसादिकका त्याग ८, उचित भोगोपभो-गका प्रमाण करना ९, सामायिक कुछ कालकेवास्ते सर्व जीवोंसे साम्यभाव धारणकर ध्यानारूढ होना। १०, पर्वतिथि-योंमें उपवासादिक करना ११, पात्रोंको भक्तिपूर्वक दान देना १२ नित्य प्रति त्रिकाल सामायिक करनेको सामायिक संज्ञक तीसरी प्रतिमा कहते हैं। पर्व तिथियोंमें नियम पूर्वक जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदरूप शक्त्यनुसार उपवासादिक करनेको प्रो-षधोपवास सज्ञक चतुर्थ प्रतिमा कहते हैं। कच्चा जल वन-

स्पति आदिक सचित्त (जीवसहित) पदार्थोंके खानेके त्यागको सचित्तत्याग नामक पचम प्रतिमा कहते हैं। दिवा मैथुन त्यागको षष्टम प्रतिमा कहते है। स्वस्त्री तथा परस्त्री अर्थात् स्त्रीमात्रके ससर्गके त्यागको ब्रह्मचर्य्य संज्ञक सप्तम प्रतिमा कहते हैं। हिंसाके कारणभूत कृषिवाणिज्यादिक आरम्भोंके त्यागको आरम्भत्याग सज्ञक अष्टम प्रतिमा कहते हैं। गृहस्थाश्रमका भार पुत्रोंको सोपकर सब धनधान्यादिक परिग्रहसे ममत्व त्याग किंचित कालपर्यन्त गृहमें ही निवासकर धर्म सेवनको परिग्रहत्याग सज्ञक नवमी प्रतिमा कहते हैं। गृहत्याग चैत्यालय तथा धर्मशालामें निवासकर धर्म सेवन करने तथा भोजनके समय किसी सदगृहस्थके बुला ले जानेपर उनके यहा भोजन कर आना किन्तु पहिलेसे किसीका निमत्रण नहीं मानना इस प्रकारके धर्म सेवनको अनुमति त्याग नामक दशमीं प्रतिमा कहते हैं। गृहवास त्याग वनमें जाकर गुरुदीक्षा लेकर धर्मका सेवन करना। भोजनके लिये किसीके बुलानेसे न जाना किन्तु गृहस्थोंने स्वतः जो अपनेवास्ते आरम्भकर भोजन बनाया हो उसहीको ग्रहणकरे अपने वास्ते बनाये हुए भोजनको ग्रहण नहीं करना किन्तु भोजनके समय गृहस्थोंके घर जाना और उनको अपना आगमन जनाकर यदि वे भक्तिपूर्वक आहार करावें तो आहार करना अन्यथा अति शीघ्र वहांसे लौट जाना और इस ही प्रकारसे जिस गृहस्थके भोजन हो जाय वहांसे लौटकर बनमें जाय धर्मसेवन करना, इस प्रकार धर्म सेवनके भेदको उद्दिष्टत्याग नामक ग्यारहवीं प्रतिमा कहते हैं। ग्यारहवीं

प्रतिमाके दो भेद हैं एक क्षुल्लक और दूसरा ऐलक। क्षुल्लक लगोटी और ओढनेकेवास्ते एक खडवस्त्र जिससे शरीर पूर्णरूपसे नहीं ढकसके रखते है। किन्तु ऐलक एक लगोटी ही रखते है ऐलक स्थानादिक सशोधनकेलिये एक मयूरपिच्छका रखते हैं किन्तु क्षुल्लक मयूरपिच्छका न रखकर अपने खडवस्त्रसे ही स्थान सशोधन कर लेते है। क्षुल्लक छुरा अथवा कैचीसे बाल कटवाते हैं किन्तु ऐलक अपने हाथोंसे ही केशलुचन करते है। देशव्रत सज्ञक पचम गुणस्थानके ये ग्यारह भेद है। इस गुणस्थानमें अप्रत्याख्यानका कर्मका उपशम रहता है। अप्रत्याख्यानका जवतक किंचित् भी उदय रहता है, तबतक देशव्रत धारण नहीं कर सकता है। प्रत्याख्यान कर्म यद्यपि मुख्यतासे सकलचारित्रका घातक है तथापि गौणतासे देशचारित्रका भी घातक है। इस ही कारण जवतक प्रत्याख्यान कर्मका तीव्र उदय रहता है, तवतक पहली प्रतिमा होती है। और ज्यों २ प्रत्याख्यान कर्मका मद उदय होता जाता है त्यों २ द्वितीयादिक प्रतिमा होती जाती हैं। ग्यारहवीं प्रतिमामें प्रत्याख्यान कर्मका उदय अत्यन्त मद हो जाता है। इस लिये वह देशव्रत घातनेमें समर्थ नहीं होता और देशव्रत पूर्ण हो जाता है। प्रत्याख्यान कर्मके उपशमसे तथा सज्वलन और नोकषायके तीव्र उदयसे प्रमत्तविरत संज्ञक छठा गुणस्थान होता है। और जव संज्वलन और नोकषायका मद उदय होता है तब अप्रमत्तविरत सातवा गुणस्थान होता है। षष्ठम आदि ऊपरके सब

गुणस्थान मुनि अवस्थामें होते हैं। मुनि अवस्थामें हिंसादिक पच पापोंके सर्वथा त्यागसे मुनिके पच महाव्रत होते हैं। मुनि जहांतक होसके मन वचन कायके योगोंकी निवृत्तिरूप गुप्ति-धर्मका पालन करते है। जब गुप्तिधर्म पालनमें असमर्थ होते तब पच समितिरूप प्रवृत्ति करते हैं। गमन करते समय जूडा प्रमाण भूमिको शोधकर गमन करनेको ईर्यापथसमिति कहते हैं। विवेक पूर्वक हित मित वचन बोलनेको भाषासमिति कहते हैं। निर्दोष आहार ग्रहण करनेको एषणासमिति कहते है। देखभालकर पुस्तक पिच्छका कमडलुको धरने उठानेको आदाननिक्षेपण समिति कहते है। भूमि संशोधनकर मलमूत्र निक्षेपणको व्युत्सर्गसमिति कहते हैं। वे मुनि इन्द्रिय विषयोंसे उपेक्षित होकर सदा काल ज्ञान ध्यान और तपश्चरणमें लीन रहते है। आहारके वास्ते किसीसे याचना नहीं करते। भोजनके समय गृहस्थोके घर जहां तक किसीको जानेकी मनाही नहीं है वहातक जाते है। विज-लीके चमत्कारवत् दर्शन देकर यदि किसीने भक्तिपूर्वक भोज-नार्थ तिष्ठनेके लिये प्रार्थना नहीं की तो तत्काल वापिस लौट जाते है। दिनमें केवल एक बार एक ही स्थानमें खडे अन्न जलका ग्रहण करते हैं। समस्त पदार्थोंसे ममत्व रहित केवल शरीरमात्र परिग्रहसहित नग्न दिगम्बर मुद्राके धारण करते हुए बिना सवारी पांव पैदल अनेक देशोमे विहार करते हुए भव्य जीवोंको धर्मोपदेश दे स्वपर कल्याण करते है। शरीरसे ममत्व न होनेके कारण अनेक रोग आनेपर भी रोगका इलाज नहीं

करते। पैरमें कांटा लग जाय तो उसको भी नहीं निकालते। पत्थर सुवर्णको समान समझते, स्तुति तथा निन्दा करने वालोंको समदृष्टिसे देखते हैं, शत्रु और मित्र जिनके समान हैं यदि कोई दुष्ट आकर उनको कष्ट देवे तो समभाव धारण करके ध्यानमें लीन हो जाते है। और जबतक वह उपसर्ग दूर नहीं हो तबतक उस स्थानसे नहीं उठते। केशलुंचन अपने हाथोंसे करते है। दन्तधावन तथा स्नानकी तरफ जिनका कभी उपयोग ही नहीं जाता। ध्यानमें ही जिनका समस्त काल व्यतीत होता है। कदाचित् निद्राकी बाधा होनेपर भूमिपर किंचित कालकेलिये शयनकर पुनः ज्ञान ध्यानमें लीन हो जाते है। नाना प्रकारके परीषहोंको समभावोंसे सहन करते हुए उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव सत्य शौच सयम तप त्याग आकिं-चन ब्रह्मचर्य दशविध धर्मोका सेवन करते रहते हैं। वैराग्य भावनाओंका चिंतवन करते हुए अनशन अवमोदर्य रसपरि त्याग कायोत्सर्ग ध्यान आदिक तपश्चरणमें लीन रहते हैं। ऐसे मुनियोंके जब तक सज्वलन और नोकषायका तीव्र उदय रहता है तब तक वे मलजनक प्रमादके सद्भावसे प्रमत्त सज्ञक छठे गुणस्थानमें रहते हैं। जब सज्वलन और नोकषायका मद उदय होता है तब वह मद उदय प्रमाद, उत्पादन करनेमें समर्थ नहीं होता इसलिये उस समय उनके अप्रमत्त सज्ञक सप्तम गुणस्थान होता है। इस सप्तम गुणस्थानतक जीवके जो कषाय होते है उनको यह स्वय अनुभव नहीं कर सकता है इसलिये इन-कषायोंको बुद्धि पूर्वक कषाय कहते हैं। आठवें

नवें और दशवें अर्थात् अपूर्वकरण अनिवृतकरण और सूक्ष्मसांपराय इन तीन गुणस्थानोंमें उत्तरोत्तर कषाय ऐसे सूक्ष्म हो जाते हैं कि जिनको यह आत्मा स्वयं अनुभव नहीं कर-सकता इसलिये इन कषायोंको अवुद्धिपूर्वक कषाय कहते हैं। सातवें गुणस्थानसे आगे दो मार्ग हैं अर्थात् उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी। उपशम अर्थात् प्रथमोपशम तथा वेदकसम्य-क्त्वका सद्भाव सातवें गुणस्थानसे आगे नहीं है। आगे चढ़ने-वाला जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको छोडकर वेदक सम्यग्दृष्टि जीव अनंतानुवधी कर्मको जोकि सत्तामें है अप्रत्याख्यानादिक अन्य कर्मरूप परिणमा देता है। और दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका उपशम कर या तो द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि हो जाता है। और या क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि होजाता है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी ये दोनों श्रेणी चढ़ सक्ता है किन्तु द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी क्षपक श्रेणी नहीं चढ़ सक्ता। जिस जीवके परिणाम कम विशुद्ध होते है वे चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतिका क्षय नहीं कर सकते किन्तु उपशम करते हैं। आठवें गुणस्थानसे उपशमका प्रारम्भ होकर दशवें गुणस्थानके अन्तपर्यन्त २१ प्रकृतियोंका उपशम कर चुकते हैं। चारित्रमोहनीय कर्मका उप-शम होनेसे यथाख्यात चारित्रका प्रादुर्भाव होता है। और तव इस जीवके उपशांत कषाय नामक ग्यारहवा गुणस्थान होता है। जव उपशमका काल व्यतीत हो जाता है तव चारित्र-मोहनीय कर्मके उदयसे ग्यारहवें गुणस्थानसे च्युत होकर नीचेके

गुणस्थानोंमे आ जाता है। किन्तु क्षपकश्रेणीवाला जीव आठवें गुणस्थानके प्रारम्भसे चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोंको क्षय करनेका प्रारम्भ करके दशवें गुणस्थानमें चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोंका क्षय कर चुकता है। और तब इसके यथाख्यात सयमका प्रादुर्भाव होता है और उस समय इस जीवके क्षीणमोह संज्ञक बारहवां गुणस्थान होता है। आठवेंसे लगाकर बारहवें गुणस्थान तक ध्यानारूढ अवस्था होती है। बारहवें गुणस्थानके अन्तमें शेप तीन घातिकर्मोका भी नाश करके सयोगकेवली नामक तेरहवें गुणस्थानको प्राप्त होता है। इस गुणस्थानमें चारों घाति कर्मोके अभावसे अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन अनन्तवीर्य अनन्त-सुख क्षायिकसमक्त्व क्षायिकचारित्र ये आत्माके छहों गुण प्रगट हो जाते हैं। ससारके समस्त त्रिकालवर्ती चराचर पदार्थोंको युगपत् हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष जानते है, इस कारण सर्वज्ञ हैं। राग द्वेष मोह काम क्रोधादिक कषायोंसे रहित हैं इस लिये वीतराग है। नामकर्मका उदय विद्यमान हैं इस लिये आहार वर्गणाके ग्रहण-से शरीर तथा भाषा वर्गणाके ग्रहणसे दिव्यध्वन्यात्मक शब्दके सद्भावसे वक्तृत्व गुणविशिष्ट हैं। नाम कर्मके उत्तरभेद स्व-रूप प्रशस्त विहायोगातिके उदयसे अनेक देशोंमें विहार करते हैं थोडे काल पीछे नियमसे मोक्षको जांयगे तथा आयुकर्मके उदयसे वर्तमान कालमें जीवित हैं इसलिये जीवन मुक्त हैं। आत्माके समस्त गुण पराकाष्ठाको पुहच गये हैं। तथा शरीर-करके सहित है इसलिये सकल परमात्मा है। समस्त गृहस्थ तथा साधुओं करि पूज्य है इसलिये अर्हन् हैं। परम विभूतिकर स-

हित है इसलिये परमेश्वर है। मोक्षमार्गके विधायक हैं इस-लिये विधाता है। यह ही सहस्रनामविशिष्ट जीवनमुक्त परमात्मा अनेक देशोंमें विहार करते हुए भव्यजीवोंको मोक्षमार्गका उपदेश देकर अपने गुणस्थानके अन्तमें योग निरोधकर अयोगकेवली संज्ञक चौदहवें गुणस्थानको प्राप्त होकर इस गुणस्थानके अन्तमें अघाति कर्मोंका भी नाशकरके अपने उर्द्धगति स्वभावसे लोक शिखरको प्राप्त होकर मोक्षसे पाणिग्रहण कर स्वानुभूतिरूप निज परिणतिमें लीन हुए सदाकेलिये अनन्तकाल पर्यन्त परमानन्दस्व-रूप सुखसागरमें निमग्न रहते हैं। इस समस्त कथनका सारांश इस प्रकार है। यद्यपि इस ससारमें जड़ चेतन और उनके अन्तर्भेदोंकी अपेक्षासे अनेक पदार्थ हैं। परन्तु शुद्धात्मतत्वरूप परब्रह्मके सिवाय सब ही हेय है। केवल परब्रह्म ही उपादेय है दूसरा कोई भी उपादेय नहीं है, इसलिये उपादेयताकी अपेक्षासे परब्रह्म अद्वितीय है। ससारमें यह जीवात्मा अष्ट कर्मरूप मायामें लिप्त होता हुआ ससारमें घोर दुःख भोग रहा है। जब अष्ट कर्मरूप मायासे अलिप्त हो जाता है तब यह जीव लोक शिख-रपर विराजमान अनेक शुद्धात्माओंके समूहरूप परब्रह्ममें एक क्षेत्रावगाहस्थितिरूप तल्लीन हो जाता है। इसलिये शुद्धात्म-स्वरूप जीव और अनन्त शुद्धात्माओंके समूहरूप परब्रह्ममें अंश अशी सम्बन्ध है।

जीव और मायाके सम्बन्धका हेतु मिथ्यात्व रागद्वेषादिक भाव स्वरूप भ्रम है इस भ्रमके नाश होनेसे ही यह जीव मायासे अलिप्त होकर परब्रह्ममे मिल जाता है। इन राग द्वेषादिक

भावोंके अभावको ही अहिंसा कहते हैं। इसलिये सार्वधर्म अहिंसा स्वरूप है। भ्रमात्मक ज्ञानके निमित्तसे आदिके दो गुणस्थानवर्ती जीव वहिरात्मा है। क्योंकि इन्होंने वाह्य पदार्थोंमें आत्मवुद्धि मान रक्खी है। तीसरे गुणस्थानवर्ती जीव मिश्रात्मा हैं। चौथेसे लगाकर वारहवें गुणस्थानपर्यन्तवाले जीव अन्तरात्मा हैं। क्योंकि ये निजात्मामें ही आत्मवुद्धि मान अपनी आत्माको परमात्मा वनानेके उपायमें निमग्न हो गये हैं। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती जीव सकल परमात्मा हैं। यह जीव वहिरात्मपदमें मग्न हुआ परमें आपा मान अनादि कालसे इस असार संसारमें घोर दुःखोंको सहन करता हुआ परिभ्रमण कर रहा है। भ्रमवुद्धिके मिटनेसे आपमें आपा मान परपदार्थोंसे रागद्वेषत्याग सम्यग्दर्शन ज्ञानचरित्र स्वरूप रत्नत्रयात्मक **सार्वधर्मका** आराधन करनेसे यह जीव परमात्मपदको प्राप्तकर मोक्षधाममें अविनाशी अनन्त सुखको भोगताहुआ सदा आनन्दसागरमें मग्न रहेगा। इसकारण सत्य खोजी आत्मकल्याणाभिलाषी निष्पक्ष महाशय इस छोटेसे निवंधमें से सार्वधर्मकी आराधनासे उपादेय तत्त्वको ग्रहणकर अपनी आत्माके हितमें प्रवृत्ति करेंगे। इस निवधमें अज्ञान तथा प्रमादवश यदि कोई शब्द आपके चित्तको आघात पहुंचानेवाला लिखागया हो तो मैं उसके लिये क्षमा प्रार्थी हूं। आशा है कि आप अपनी उदारशीलतासे क्षमा प्रदान करेंगे।